

चट्टानें

[सामाजिक उपन्यास]

परदेशी

भारती साहित्य मंदिर

फव्वारा—दिल्ली

मूल्य तीन रुपये

प्रकाशक :
गौरीशंकर शर्मा
अध्यक्ष
भारतीय साहित्य मंदिर
(एस. चंद एण्ड कम्पनी से सम्बद्ध)
दिल्ली

प्रथम बार
२०००

मुद्रक :
सुरेन्द्र प्रिन्टर्स लि०,
डिप्टीगंज,
दिल्ली

श्री बीरेन् भाई को

'देखिए न, मुझे आरती सजाते
कितनी अबेर हो गई !'

—परदेशी,
ओरलेम, मलाड,
बम्बई ।

आपकी यह पुस्तक

यह तो आप जानते हैं कि 'चट्टानें' आप-जैसे सहृदय साहित्य प्रेमियों के लिए है। 'धर्मयुग' (बम्बई) में धारावाहिक जब निकला तो लाखों पाठकों ने इसे पढ़कर प्रशंसा की इसके कला-शिल्प की, कथा-कौशल की, चरित्र-रचना और चित्र-चित्रण की। इसकी अनूठी शैली और अनोखी भाषा सर्वथा आकर्षक एवं मनोमोहक थी--कि आपने और अन्य पाठकों ने इसे यथा शीघ्र पुस्तकाकार पाने का आग्रह किया।

आज आपका वह आग्रह हमारे इस उपहार के रूप में प्रत्यक्ष प्रस्तुत हैं। इसे स्वीकार कीजिए।

—प्रकाशक

१

गाँव पहाड़ी के उस पार था।

इस लम्बे चढ़ाव के बाद उतार आता था। और उतार के बाद अगले मोड़ पर बसे गाँव की सीमा शुरू होती थी।

कँकरीली और कँटरीली पगडंडियों के परे इस चढ़ाई पर चढ़ने वाले ये कुल पाँच पंथी थे—दो स्त्रियाँ और तीन पुरुष।

पुरुषों में सबसे आगे चलने वाला एक जवान था जो अपनी भावज को गौने से बिदा कर, ले जा रहा था। दूसरा एक वृद्ध था जो शहर की अदालत से लौट रहा था। तीसरा था अधपके बालों वाला देहाती डाक्टर, जिसकी डिग्री की चमक शहर में जब मंदी पड़ गई तो गँवई गाँव में आ बसा था और अब पास के कस्बे से कुछ आवश्यक दवा-दारू खरीद कर लौट रहा था। दूसरी औरत अध्यापिका थी—अध्यापक की मजबूरी जिसके चेहरे पर लिखी थी।

गर्मियों के सूखे और बेरहम दिन थे। पवनदेव कंजूस नाग की तरह अपने वायुकोष पर कुंडली मारे कर बैठे थे। वातावरण में चारों ओर सांय-सांय की सरसराहट थी। उदास और रुँआसी, दीर्घकाल की वियोगिन दोपहरी—विदेश में मरे पल्टनिया जवान की विधवा की तरह पछाड़ें खा-खा कर घाटी की चट्टानी दीवारों से सर पटक रही थी। उसका विलाप पहले तो पड़ौस की पहाड़ियों में प्रतिध्वनि बनकर लहराता, फिर, तपते तीर की तरह सनसनाती आती लू के साथ लौट आता।

सफ़री जवान ने पीछे मुड़कर देखा—बूढ़ा पास के पलाश-पेड़ के पत्ते पगतली पर बाँध रहा था। सचमुच, चढ़ाव के कंकर भभकती भट्टी के नन्हें कोयले-से तप उठे थे और उनकी नुकीली नोकों से बचने के लिए बूढ़े का यह प्रयास उसकी गँवई परम्परा के अनुरूप ही था। तभी—

'उई'—कहकर, जवान की भौजाई रुक गई। उसके पैर में काँटा लग गया था। चुभने वाला यह सातवाँ काँटा था, और वह सातवीं बार राह में रुकी थी।

गाँव के जवान ने झुककर भौजाई की ईंगुर और मेंहदी लगी पगतली को देखा—उसकी एड़ी पर थूमर का एक बड़ा-सा सफ़ेद काँटा लगा था। जवान ने तिरस्कारपूर्वक काँटे की ओर देखा और एक ही झटके में उसे बाहर खींच लिया। गँवई गाँव से आने वाली, गौने की उस गोरी वधूटी की आँखों में आँसू छलक आए। वह फिर से चलने लगी और साथ ही उसका मन इस आशंका से भर गया कि अब क्या आठवाँ काँटा भी लगेगा? आज तक कौमार्य की अनबींधी बाँसुरी वह बजाती रही थी। अब बीच में ब्याह ने आकर उसके स्वरों में एक नया स्वर मिला दिया था और आज जबकि उस नये स्वर की पुकार पर किसी अनजाने परदेसी के घर-आँगन की दीवाली बन कर जा रही थी, यह नया अनजाना और अपरिचित स्वर रह रह कर उसके अन्तरतम में गूंज उठता था। किशोरी के अछूते मानस-मंदिर में, अपने स्वप्नों के अनजाने राजकुमार की देवमूर्त्ति प्रतिष्ठित हो गई थी, जिसकी स्थिति के भान ने उसे संज्ञा-विहीन और बेभान बना दिया था। और मालवा की बैशाखी दोपहरी में जब अमराइयों में कोयल की

काकली खिली हो और अन्तहीन काले खेतों में अफीम के लाल और सफ़ेद फूल किन्हीं वनबालाओं-से खिल कर महक रहे हों और जब कोयल फिर से बेचैन बनी कूक उठी हो, तो, काँटा क्यों न गड़ जाय और जवान की भौजाई जीवन की अनचली लम्बी गैल पर क्यों न रुक जाय। आखिर, गति और प्रगति का नाम ही जीवन और यौवन है।

जब तक जवान ने काँटा निकाल कर भौजाई को चलने के लिए प्रेरित किया, तब तक उसके साथी राहगीर आगे निकल गये। इसी समय भौजाई ने देखा कि उनसे लगभग सौ कदम की दूरी पर एक युवक और युवती चले आ रहे हैं। सो उसने अपने देवर को उनकी उपस्थिति इशारे से समझाई। जवान ने देखा—आने वाला निश्चय ही शहरी युवक है। क्योंकि उसकी चाल बतलाती थी कि वह ऐसे कँटीले और पथरीले मार्गों का अभ्यस्त नहीं है। उसने कहा—"भौजी जरा, रुकें। ये कोई शहराती मेहमान मालूम होते हैं। हमारा साथ हो जायेगा।"

पाँच मिनट में युवक और युवती जवान के निकट पहुँच गये। जवान ने पहले 'राम-राम' किया। फिर 'जय एकलिंग' कहा, जिसके उत्तर में युवक ने हाथ जोड़ दिये—

"रतनगढ़ जाना है।"

"हम भी वहीं जा रहे हैं। अब तो गाँव पास आ गया है। आप किसके यहाँ जायेंगे ?"

"ठाकुर समरसिंह के यहाँ।"

"उनके यहाँ !"—जवान की वाणी में युवक को विस्मय की ध्वनि लगी। लेकिन, एक अपरिचित राहगीर के प्रति

अधिक उत्सुक होना उसे उचित प्रतीत न हुआ।

दूर-दूर तक बड़े-बड़े बरगद, आम, जामुन, इमली और पीपल के पेड़ ! दूर-दूर तक करौंदी की गंध भरी झाड़ियाँ ! देख कर, अविनाश का मन मोहित हो गया। उसने दाहिना हाथ उठा कर पास की भरी-पूरी झाड़ियों की ओर इंगित किया और बोला—"अचला देखो, ये झाड़ियाँ हैं, शेर और चीतों के राजमहल। इनमें वे कितनी शान्ति और सुविधा से सो रहे होंगे। सचमुच, सुख और शान्ति आजादी के साथ है।"

अचला ने कुछ न कहा। वह केवल अविनाश की ओर देख कर मुस्करा दी। अविनाश ने देखा, उसकी मुस्कान में थकान भरी है और अनादिकाल से अलसाए उसके नयनों में उनींदापन छलक रहा है। और भी बहुत कुछ......!!!

अविनाश सब समझ गया। अचला के मन-मानस की स्थिति मानो बेतार से उसके अन्तर्लोक में झंकृत हो जाती है और तब अविनाश और अचला—अचला और अविनाश के बीच की दूरी अमर अहिवात के सामीप्य में बदल जाती है। लेकिन लड़खड़ाती दुनिया में विचरते पंख-हीन जीवन में ऐसे क्षण कितने, जिनमें जीवन के अनेक तार मिल कर एक तान, एक सुर, एक राग गा पाते हैं ! और जीवन किसी एक स्वर या आलाप का नाम तो नहीं है। वह तो वैविध्य का पर्याय है—जिसमें प्रतिपल अनेक सुर, ताल, लय और राग प्रतिध्वनित हो रहे हैं। इस गूढ़ भेद को अविनाश जाने तो जाने, अचला क्या जाने ! अचला जो कल ही फ्रॉक से साड़ी में आई है। कल ही स्कूल से कालिज में प्रविष्ट हुई है। और जो कल ही जेल से भाग कर उस राह

पर लगी है जो रतनगढ़ को जाती है।

"आगे बढ़ो अचला, राहें थमने के लिये नहीं होतीं। समय चलते रहने को मिलता है। निराशा को मन में जगह न दो। ...तुमने कभी इन पेड़-पौधों को निराश होते देखा है? ये सारी आँधियों को अपने सर पर झेलते हैं और इन वनैले जंतुओं को आशा के अभाव में आत्महत्या करते देखा है, जो भूखे रहते हैं और प्यास को सहते हैं। निराशा का आविष्कार तो मनुष्य ने किया है। ऐसे-ऐसे करिश्मे उसी को आते हैं—"

"अब चलो भी......" अचला ने विचला वाणी में कहा।

"तुम ठाकुर समरसिंह को जानते हो?" ग़ौर से बात सुनते जवान से अविनाश ने पूछा—

"आस के अस्सी और पास के पचास गाँवों में उन्हें कौन नहीं जानता। लेकिन आज कल वे......"

"कहो, रुक क्यों गये......?"

"आप सरकारी आदमी तो नहीं हैं?"

"नहीं, भाई नहीं, सरकारी आदमी 'आदमी' नहीं होता। वह तो शक्ल सूरत से ही पहचान लिया जाता है। और तुम तो इतने अबोध नहीं लगते!"

"ठाकुर साहब फरारी में हैं। सरकार ने उन्हें जिन्दा या मरा पकड़ लाने के लिए बीस हज़ार का इनाम निकाला है।"

अविनाश और अचला स्तब्ध रह गए। सरकार के जिस कानून और न्याय की छाया से छूट कर वे अपरिचित प्रदेश में भाग आए थे, वहाँ भी वह छाया उनका पीछा कर रही थी। और सुरसा की तरह अपना रूप और आकार बढ़ा कर उन्हें निगल जाने को तरस रही थी! काली, बेरहम और हिंसक

छाया—जिसके पास कोर्ट, कचहरी, कटघरे, इजलास, जीप गाड़ियाँ, क़ानून, वकील और संगीनें हैं। मौत और ज़हर है। फिर भी जो न्याय की रक्षिका और शान्ति की संस्थापिका है!—यह नर और नारायण का कैसा मज़ाक है?

"और रतनगढ़ की आबादी कितनी है?"—अविनाश ने जवान से बातचीत चालू रखने के अभिप्राय से पूछा।

"यही कोई चार हज़ार। बांस-मिट्टी के झोंपड़े और कच्चे-मकान मिला कर कुल आठ सौ घर हैं। एक मिडिल स्कूल है। एक दवाघर है। डाकघर भी है। एक मंदिर और एक मस्जिद भी है। ईदगाह और दशहरे का मैदान भी है।"

"मैदान में रावण भी मरता है।"—भौजाई ने धीमे स्वर में जैसे अचला से कहा।

"रावण की मौत मैदान में ही होती है। वह सत्य की सीता का हरण करता है और कुटिल शक्ति और कूटनीति के तर्क बढ़ा कर, उसे अपने यहाँ रख लेना चाहता है। परन्तु, कोई रावण आज तक सीता को अपने यहाँ रखने में सफल नहीं हुआ और अपनी जिस अमृत-कुंडली का उसे अभिमान था, उसी पर प्रहार कर सत्य की शक्ति ने उसे पराजित किया—" अचला का स्वर ऊँचा होता गया कि आगे चलते अदालती बूढ़े का ध्यान आकर्षित हुआ और वह रुक कर इन लोगों के साथ हो गया। अचला ने एक दृष्टि उस पर डाली और फिर उसके स्वर का आरोह मध्यम से तीव्र की ओर बढ़ा—"बहन, रावण को शक्ति का मद था। शक्ति का अंत-हनन शक्ति से ही होता है। शक्ति का दूसरा नाम रचना है। शक्ति जब नवनिर्माण में नहीं लगाई जाती तो वह आसुरी-

शक्ति बन जाती है, उसमें संहारत्व आ जाता है, और उसकी यह संहार-शक्ति ही उसके समूल आत्म विनाश का अस्त्र बन जाती है।"

भौजाई अचला का मुँह देखती रह गयी। अचला हरी चोली पहने थी। साफ़ धुली साड़ी में उसकी गौर, इकहरी देह म्यान में रखी तलवार की तरह थी। लम्बी नासिका और लम्बी बरौनियों वाली इस अचला के लिए गाँव की इस कृषक-वधू की मौन ममता सहज ही उभर आयी। वह अब भी एकटक मुँह जोहते बोली—"मास्टरनी बाई, गँवई सत्-असत् में क्या समझें ?"

वृद्ध आगे बढ़कर बोला—"क्यों न समझें ? इतना तो हम भी जानते हैं कि जो पराया है, वह हमारा नहीं है, और उसे लेने का हक भी हमारा नहीं है, और जो अपना है, उसे सहजे रखने का हक भी अपना है और जो दूसरों की चीज़ चोरी-छिपे हम लेते नहीं, तो अपनी जबरन् देंगे नहीं। यों प्रेम के बदले अपना सरवस भले न्यौछावर कर दें।"

"ठाकुर बीस गाँव के मालिक हैं। उनकी मर्जी . . ."

जवान ने कुछ किया और दुल्हिन रुक गई। अचला जब बोली कि कहती जाओ बहन तुम्हारी बातें मुझे अच्छी लगती हैं, तो, भौजाई 'कह देने भर' के अपने अधिकार और लोभ का संवरण न कर सकी—

"जागीरदार समरसिंह रावण है। रतनगढ़ लंका है।"

"और तुम सीता—खुद लंका की ओर जा रही हो ?"—अचला ने बड़ी-बड़ी आँखों की नीलिमा पसार कर पूछा।

ग्रामवधू पहले पद्मिनी-सी लजा गई—"कहाँ सीता रानी, कहाँ हम ? . . . हमें तो नैहर छोड़े नौ दिन ही हुए हैं। रीत-

नीत हम क्या जानें ?"

अब तक अविनाश चुप था—और चुपचाप पीछे चल रहा था। ग्राम्या की ऐसी मिसरी बातें सुन कर, उसका कवि-मन भावना के भँवर में उलझ गया। बनारस की पुरानी, सुनहरी साड़ी में ग्राम्या की देह-यष्टि पतले पीले तार-सी लग रही थी। अपने भार को असह्य मान, उसने अदालती बूढ़े को देख कर पूछा—"लोग कैसे हैं रतनगढ़ के ?"

"अभी रतनगढ़ का नक्शा देखोगे बाबू तो खुद ही समझ जाओगे कि रतनगढ़ वाले कैसे हैं···दूर ढाल के किनारे जो कठोर और काली चट्टानें हैं, उन-सा ही है रतनगढ़ वालों का जीवन—निर्जन और अंतहीन! कहीं कोमलता नहीं, कहीं रस नहीं, कहीं सीमा नहीं। लालिमा और हरीतिमा उनकी छाया से परे हैं। धरती बिछौना और आकाश उनका ओढ़ना रहा है। बामन-बनियों की बात तो मैं नहीं करता, पर रावले (ठाकुर या उनका महल) का शरीर तो प्रकृति की गोद में ही पलकर बड़ा हुआ है, हालांकि ईश्वर ने उन्हें कुछ भी देने में कुछ कमी नहीं रखी है—"

"लेकिन दो मिनट पहले ही सब लोग रावले की अस्तुति याने निन्दा कर रहे थे ?"—अविनाश ने जवान की ओर संकेत कर, वृद्ध को रोका।

"वह निन्दा नहीं व्याजस्तुति थी"—अचला ने देवर को संकोच के घेरे से बचा लिया। वह भी हँस दिया और इन सबको हँसते देख भौजाई भी हँस दी।

"पहाड़ी चट्टानों-सा जिनका जीवन है! धरती जिनकी सेज और आकाश जिनका छत्र है! तारे जिनके दीपक और

चाँद-सूरज जिनके पहरुए हैं—ऐसे रतनगढ़ वाले रावले की भाँजी है अचला देवी !"—अविनाश ने तनिक व्यंग्यपूर्वक कहा। किन्तु जवान इसे अपनी वार्ता का अनुमोदन जान, बोला—"बाबू, ठीक कहते हो।"

"करौंदी की इन अंकड़-बंकड़ झाड़ियों की तरह, जिनके जीवन के सूत्र उलझे हुए हैं, मेरा अनुमान है साधारण मनुष्यों की अपेक्षा उनमें कुछ अन्तर है। यह भूमि ही बड़ी विचित्र प्रतीत होती है, ऐसे ही विचित्र होंगे न यहाँ के प्राणी ?"

—अविनाश ने जैसे अचला की आँखों से प्रश्न किया है, इस प्रकार, उत्तर भी वह उसके तरल रतनारे लोचनों में ही खोजता रहा।

परन्तु, उत्तर न मिला।

दाएँ हाथ पर, पगडंडी से हटकर एक कुइयाँ थी।

—जवान ने आगे बढ़ कर अपना लोटा डोर संभाला।

—भौजाई कुइयाँ पर छाया-रचते पीपल के भैरो के चबूतरे पर माथा टेक कर एक ओर बैठ गयी।

—अचला उसके पीछे थी। वह निःसंकोच भाव से जवान के निकट बढ़ी। प्यास उसे नहीं थी पर वह पहली बार यह देखना चाहती थी कि गाँव के कुओं का पानी कैसा होता है ?

—अविनाश दूर तक पलक पसारे रतनगढ़ को पढ़ लेना चाहता था, मानो, रतनगढ़ अजनबियों का गाँव नहीं, क़ानून की कोई पोथी है, जिसमें धारा, नियम, उपनियम, जुर्माना और सज़ा की अवधि लिखी है !·····

चारों बटोही फिर बढ़ चले।



अचला ने माँ का सुख नहीं देखा था। उसका मुख ही देखा था।

बचपन में ही माँ मर गई थी। उसे नन्हीं और अकेली छोड़ कर।

माँ की वह मूरत आज भी अचला की आँखों में घूम जाती है —

ऊपरी मंज़िल के सूने कमरे में वह एकाकिनी लेटी रहती —अपनी उस शैया पर, जो पहले सुहाग-शैया, बाद में रोग-शैया और अन्त में मृत्यु-शैया बनी।

वह अचला को अपने पास बिठा कर उसकी अलकें सुलझाया करती। फिर वह ज्यादा बीमार रहने लगी और उसने अचला की अलकें सँवारना छोड़ दिया। अब सिर्फ वह अचला का मुख देखा करती—अपलक। फिर उसकी आँखें भर आतीं।

नन्हीं-सी अलका कहती—'मट लो माँ।'

और माँ फूट-फूट कर रोने लगती। तकिए में मुँह छिपाए वह सुबुकती रहती।

नौकरानी आती। कभी दवा बदल जाती। कभी सुराही में पानी भर जाती। कभी चाय दे जाती। कभी अचला को कमरे में बिठा जाती या उठा जाती।

माँ के सामने दीवार पर, खिड़की के ऊपर, एक बड़ी घड़ी टिक्-टिक् किया करती।

फिर डाक्टर दिन भर नीचे के कमरे में ही रहने लगा और माँ से उसका मिलना बंद हो गया।

माँ से मिलना बंद हो गया और तबसे अचला को डाक्टर अच्छे नहीं लगते उनका सूट, उनका स्टेथसकोप, उनका बेग—सबसे अचला को घृणा है। एक अनजाना भय है। किसी भी डाक्टर को देखते ही उसे वह गंध आती है, जो माँ के कमरे में बनी रहती थी! आज तो यह गंध ही माँ के अंतिम दिनों की स्मृति है।

फिर एक दिन घर में न जाने कैसी मनहूस उदासी छा गयी और नौकर-चाकर, दास-दासियाँ, खवास और हजूरी सब नीचा सिर किये इधर-उधर होने लगे, रोने लगे।

"रानी जी का स्वर्गवास हो गया।"

माँ जब अचला को न दिखाई दी तो, उसे रानी जी के स्वर्गवास का अर्थ मालूम हो गया और हजूरी हरिराम उसे बहलाता—"बा अन्नदाता भगवान के यहाँ पधारी हैं।"

"भगान के याँ बा गई है?"

—छोटी अचला ने पूछा था यह न जानते हुए कि ऐसे विकट प्रश्न का उत्तर एक हजूरी के दिमाग़ी-दायरे से बाहर की चीज़ है।

बा अन्नदाता भगवान के घर से वापस नहीं लौटी।

और अचला उसकी राह देखते-देखते पन्द्रह के पार आ गयी।

अचला जब एक दिन कालिज से लौटी तो देखा घर पर कुछ मेहमान आये हैं।

और उनके साथ जो दुबला-पतला पर एकदम गोरा तरुण

है, उसका नाम अविनाश है।

—'ये लोग' अब यहीं रहेंगे।

अविनाश के परिवार का अजमेर की उस कोठी में रहना उसकी माँ की ममता, उसके पिता का स्नेह—सब अचला को याद है।

पिता जी का मन राजपूताना के इस अर्द्धसभ्य नगर से ऊब गया था। वे इंग्लैण्ड जाकर बसना चाहते थे।

अचला ने अविनाश के पिता से चर्चा करते अपने पिता की बात यों सुनी थी—

"इंग्लैण्ड जाने की मर्जी है, मित्र ! इस देश से दिल भर गया है। ज़माने भर की बेवकूफी जैसे यहाँ के लोगों के पल्ले पड़ी है। न्याय की माँग—जहाँ अन्यायी करते हैं, ईमान की क़सम जहाँ बेईमान खाते हैं, दुनिया का सबसे बड़ा और पवित्र हिन्दू-धर्म जहाँ अपमानित है; जहाँ अपने ही लोग अपने शत्रु हैं।"

"तुम इतने निराश क्यों हो चले हो ? मैं बार-बार देखता हूँ कि भाभी के स्वर्गवास के बाद तुम बहुत कुछ बदल गये हो। ...... लोगों की 'बेवकूफी' से तुम्हें क्या ?......"

"हम लोगों से—जनता से कट-हट कर नहीं रह सकते। समझदार, विलक्षण, सरल और निरभिमानियों के बीच बैठ कर मन प्रसन्न होता है, इसके बजाय जाहिल, काहिल, कुटिल और घमंडी लोग अपने और औरों के बोझ बनते हैं।"

चुप बैठी अचला दोनों की बात ध्यान से सुनती रहती। ऐसी अनेक संध्याएँ उसने इन दोनों साथियों के सम्पर्क में बिताई थीं।

समय और समाज के ढाँचे में ढला जीवन बीतता जा रहा था। अपने एरिस्टोक्रेटिक परिवार के या अपने वर्ग के विश्वास, 'ईगो' और 'काम्प्लेक्स' अचला में उभरने लगे थे।

और इधर बालापन बीत रहा था और चुपके-चुपके कदम धरता यौवन आ रहा था।

—बहार जब आती है, तो लुकती-छिपती आती है। अपने ही रूप और सौन्दर्य से वह डरती है कि ज़माने को कुछ हो न जाये।

सो अचला का यौवन भी अपने सौरभ की चपलता से चिन्तित था। इसीलिए उसकी गति मंद थी और उसका ज्वार इस प्रकार शनैः-शनैः चढ़ रहा था, जैसे किन्ही निरभ्र नीले नयनों में रतनारी जोत की ज्वाल चढ़ती है—धीरे-धीरे!

फिर पराग के मधुरस की मादकता बढ़ती जाती है। फिर नशा नहीं उतरता है और दुनिया की शक्ल बदल जाती है।

इन्हीं दिनों अविनाश की सहायता से अचला ने बी. ए. कर लिया था।

और इस घर की रीति ही अजब रही है कि अविनाश इतना निकट आकर भी अचला से दूर था।

अचला को कुछ अच्छा नहीं लगता था। वह क्या चाहती है—वह स्वयं भी नहीं जानती थी। फिर भी, हृदय में एक चाह थी, ललक थी, अधीरता थी, सूनापन था, और एक अनजान खामोशी थी।

किसी डाल पर बैठ कर गाती-चहकती चिड़िया से अचला को रश्क होता था!



गाढ़ी के लम्बे-चौड़े अहाते में आकर अचला और अविनाश रुक गये। जवान और उसकी भौजाई उन्हें बड़े दरवाज़े तक पहुँचा गये। बिदा लेकर, एक ओर वे चले गये, जहाँ कुछ टूटी-फूटी झोपड़ियाँ खड़ी थीं।

अविनाश ने आगे बढ़ कर दरवाज़े पर दस्तक दी। उत्तर में कोई ध्वनि नहीं आयी।

दूसरी बार अविनाश ने दरार से झाँक कर देखा, भीतरी आँगन श्मशान की तरह सूना था।

तीसरी खड़खड़ाहट पर अचानक ज़ोर की आवाज़ आई—"कौन है?"—अविनाश इसे सुनकर सहम गया और अचला चौंक पड़ी। इस आवाज़ से जैसे रावले की पुरानी दीवारें और छत हिल गये!

दरवाज़ा खुला—

और

एक अति विशालकाय व्यक्ति सामने खड़ा हो गया। उसने दोनों आगन्तुकों को गौर से देखा और सहसा मुस्करा कर बोला—"आप हैं!"

"जी, मामा साहब!"

—उसने अचला को गले लगा लिया।

"आइये, आइये!"—बड़े स्नेह और सम्मानपूर्वक ठाकुर समरसिंह ने अविनाश से कहा।

ठाकुर समरसिंह जितने विशालकाय थे, उतने ही बल-

शाली भी थे। पूरा सात फीट ऊँचा, कसरती बदन था उनका। बड़ी-बड़ी लाल आँखें। बड़ी-बड़ी काली मूंछें। बड़े सिर पर बड़े केशों के पट्टे और हाथ में हर वक्त भरी रहने वाली बन्दूक, जिसने अब तक जाने कितनों को अपना निशाना बनाया था।

ठाकुर के ठिकाने की आमदनी तो उतनी थी, जितनी एक अच्छे राज्य-परिवार के लिए काफी होती है, परन्तु राजपूती ठकुराई और जातीय-व्यवहारों ने उनका अधिकांश द्रव्यरस चाट लिया था। और शादी-ब्याह तथा जन्म-मरण के अवसरों पर अक्सर कर्ज़ से काम चलाया जाता था। लेकिन आज तक कर्ज से किसी का काम नहीं चला। मूल से ब्याज भारी होता है, जैसे छोटे से साँप के ज़हर की एक बूंद भी भयंकर होती है!

ठाकुर समरसिंह बरसों से अपने सूबे में प्रख्यात थे, अपने अतिथि-सत्कार और नियमित शिष्टाचार के लिये। उनके द्वार आया दुश्मन भी कभी भोजन-विश्राम किये बिना नहीं लौट सकता था और उसके साथ किसी प्रकार का छल नहीं बरता जाता था, जैसी कि प्रत्येक सच्चे क्षत्रिय-परिवार की परम्परा रही है। वे कुख्यात भी थे, अपनी क्रूरता के लिए, दंड और कठोर दंड उनका एक मात्र अस्त्र था, जिसे लेकर वे रतनगढ़ का एक-छत्र, निरंकुश शासन चलाते थे, और रतनगढ़ की बस्ती से दूर, इस विजन वन-प्रांतर में रहते थे जहाँ दुनिया की सारी सभ्यताओं और उन्नतियों का सम्मिलित प्रकाश भी अभी तक नहीं पहुँच सका था। कोई क़ानून, कोई नियम लागू नहीं था जहाँ! ठाकुर का हुक्म ही वहाँ ईश्वरीय आदर्श था, मान-

वीय न्याय था और सरकारी सिक्का था। ठाकुर कुछ भी कहे, उसका उत्तर—"जो हुक्म अन्नदाता" के विनम्र शब्दों में ही दिया जाना चाहिए। वरना……? क्या कहें, ऐसी स्थिति आज तक तो उपस्थित न हुई ! वरना, सिर कटवा लेना, अंग-भंग करवा देना, खेत में आग लगवाना, गोली मार देना, औरत उड़ा ले जाना—आदि सजाएँ थीं, जिनके प्रहार की प्रतिध्वनि तक न होती थी। सात-द्वीप नौ-खंड भूमि पर जिसके विरुद्ध कहीं सुनवाई नहीं थी। संक्षेप में ठाकुर समरसिंह किसी छोटे-मोटे बैल या चीते जैसे थे। उनका भोजन, खान-पान, रहन-सहन, वेश-भूषा, चरित्र, कर्म-धर्म—सब उन्हें बस्ती से अधिक वन का प्राणी घोषित करते थे। एक प्रकार से वे वन-मानुष थे।

आंगन में पहुँच कर अचला ने कहा—"मामा साहब, ये अविनाशकुमार हैं, राजा रामगढ़ के सुपुत्र।"

"राजासाहब तो तुम्हारे पिता के परममित्र हैं। हैं न ? कोई बाईस वर्ष पहले कुँवर बा (अचला की माँ) की बारात में वे रतनगढ़ आये थे। तब मैं उनसे मिला था। मैंने कहा।"

"जी"—अविनाश और अचला ने एक साथ कहा।

"ये मुझे यहाँ तक पहुँचाने आए थे।"

"पहुँचाने आये थे ? क्या मतलब ? तो क्या बिना साल-छः महीने यहाँ मेहमान बने चले जाएँगे ? राजा साहब बड़े आदमी हैं, तो क्या हमारे मेहमान नहीं होंगे ? मैंने कहा।"

अविनाश इस दैत्याकार व्यक्ति की विनम्रता और शालीनता देखकर दंग रह गया। मुस्कराते हुए बोला—"मैं रावले का बड़ा आभारी हूँ। बरसों से आपका नाम सुनता

आ रहा था और बड़ी इच्छा थी कि कभी रतनगढ़ आकर आपके दर्शन करूँ और आपको कष्ट दूँ।"

"सो बड़ी कृपा की।—"ठाकुर समरसिंह, सभ्य संसार से वन-प्रदेश में आए इस सुसंस्कृत व्यक्ति के मुख से अपनी प्रशंसा सुनकर प्रसन्न हो गये और अनायास ही मूंछों पर ताव देने लगे।

"लेकिन मामा सा' ये तो कांग्रेसी हैं।"

"कांग्रेसी हों या साम्यवादी—भारतीय संस्कृति अपने अतिथि के कुल-धर्म और पद-विश्वास को लेकर तर्क नहीं करती, उत्सुकता नहीं दिखाती। मैंने कहा—आप यहाँ कुछ दिन अवश्य रहिए और इस वन-जीवन का भी अनुभव लीजिए।" इतना कहकर ठाकुर मौन हो गये। मानो अविनाश के कांग्रेसी होने का दुख उनके मन में अब उभरा है।

"सामने आधे मील पर मेरे बेटे की गढ़ी है। वहीं आपके ठहरने का प्रबन्ध हो जायेगा। हमारा अतिथि-गृह वहीं होने से, सब मेहमान वहाँ ठहराये जाते हैं, हाँ, अचला मेरे पास रहेगी। मैंने कहा।"

"तो, क्या भैया आपसे अलग रहते हैं?"

"मैं बरसों से यहाँ अकेला रहता हूँ?

"क्यों?"

"छोकरी, याद रख, रतनगढ़ की राजगढ़ी में 'क्यों' का प्रश्न नहीं किया जाता और 'क्यों' का उत्तर नहीं दिया जाता।

—मामा के इस सहज-रुख परिवर्तन पर अचला सहम गयी। और अविनाश ने इस असुखद परिस्थिति से तटस्थ रहने के लिए अपना ध्यान दूसरी ओर हटा लिया। अचला

उँगली के पोरों से साड़ी के छोरों को ऐंठती रही। जाने, अपने मन का आवेग और आवेश, वह साड़ी के छोरों को बँट-कर, उतार रही है।

तब ठाकुर समरसिंह का शिष्टाचार और उनका सहज मानवीय स्वभाव उभरा, बोले—"सुना था, तू अंग्रेज़ी जेल में थी।"

"सो तो, अब भी थी। भाग आई।"

"भाग आई! शा-बा-श!!!"—ठाकुर ने लड़की की ओर सराहनासूचक दृष्टि से कुछ विस्मय एवं कुछ अविश्वास से देखते हुए कहा।

"पूरा ज़िला बाग़ी हो गया था, और ४३ के सारे साल ऐसा लगता था, जैसे फिरंगी हकूमत ही नहीं रही।"

अचला पर ठाकुर की ममता बढ़ गयी। जेल, गोली, मौत और ख़तरे से प्यार करनेवालों का ही ठाकुर समरसिंह सम्मान करता है।

भारी घाघरे, अँगिया, चोली और लुगड़े से ढँकी हुई एक हज़ूरन ने आकर सूचना दी,—"अन्नदाता, भोजन तैयार है।"

"मैंने कहा, क्षमा कीजिए कुँवर साहब, आपको बातचीत में लगा दिया। दरअसल, मैं बड़ा बातूनी आदमी हूँ और रतनगढ़ में किसी आदमजात से चर्चा करने का मौका छठे-चौ मासे ही मिलता है। मैंने कहा, हाथ-मुँह धोकर काँसा अरोगिए।"

"तब तक मैं भाभी से मिलती हूँ। मैंने तो उन्हें देखा भी नहीं।"

"बाद में मिल लेना, हम लोग उधर ही चलनेवाले हैं।

मैंने कहा, बड़ी सीधी और नेक है बेचारी, पर उसे अमर का सुख नहीं। अमर..."

इन दोनों की बातों का विषय मरदानी बैठक से रनिवास की ओर जाने लगा तो अविनाश फूल-पौधे देखने के बहाने टल गया।

फिर दूसरा हजूरी आया, वह हकलाता था—"हो.. हो..कम.. हो कम" अपनी समस्त शक्ति लगा कर उसने एक शब्द पूरा किया और इस अभिमान और आशा से देखा, मानो उसे विक्टोरिया क्रास मिलेगा कि ठाकुर चिल्लाए—"मैंने कहा, चल यहाँ से।"

दामा हजूरी तत्काल चला गया। वह एक पैर लँगड़ाता चलता था। सो उसके बोलने, मुड़ने और भागने की भाव-भंगिमा और गति देख कर अचला अपनी हँसी न रोक सकी। उसके जाते ही वह खिलखिलाकर हँसने लगी। ठाकुर मामा भी ठहाका मार कर हँस दिए।

आँगन में चम्पा के नीचे खड़े अविनाश ने देखा,—दूर मौलसिरी की डालियों के बीच चौथ का चाँद आधा निकल आया है और ऐसा लग रहा है कि मानों किसी शाख पर झूलता मधु-मक्खी का पीला छत्ता है! हँसते हुए ठाकुर की बड़ी-बड़ी मूंछें हवा में फहरा रही हैं और उनका साथ देती अचला की इकहरी देह की आकृति अधिक आकर्षक प्रतीत हो रही है!

और दूर पर कहीं ढोल बज रहा है और गीत के बोल सुनाई दे रहे हैं। शायद यह जवान की भौजाई के गृहागमन की खुशी में हो!

कवि अविनाश का भावनाशील मन अपनी तरंग में गा उठा—

"मुझको ला दो दुलहिन का मन !"

तब तक तारों की दुनिया से बेखबर चाँद कुछ ऊँचा उठ आया था !





जब इक्का छोटी हवेली के चौड़े दरवाज़े पर रुका तो दो नौकर दौड़कर आगे बढ़े और उन्होंने झुक-झुक कर 'मुजरा अर्ज़' किया। अचला और अविनाश गाड़ी से कूदकर उतर गए। नौकरों के कंधे पर हाथ रखकर ठाकुर साहब ने अपनी भारी-भरकम देह को अत्यन्त कठिनाई से नीचे उतारा। भोजनपूर्व वे वानर की तरह चपल रहते पर भोजनोपरान्त एक डग भी हिलना उनके लिए कठिनथा। जब वे उतरे, तो इक्के को एक धक्का-सा लगा और घोड़े ने जैसे राहत की साँस ली।

सूचना पाते ही कुँवर अमरसिंह भीतर से तेज कदम रखते हुए बाहर आए। उन्होंने आते ही हाथ जोड़कर सबसे यथाविधि 'मुजरो होकम' कहा। मुस्कराकर अचला के माथे पर हाथ फिराया, उनके पीछे चलती दो दासियों ने बढ़ कर अचला का स्वागत किया और वे बार-बार 'घणी खम्मा अन्नदाता' कहती उसे रावले में लिवा ले गईं।

दो हजूरी ठाकुर समरसिंह के पीछे अदब से खड़े हो गए। दो अविनाश की बगल में खड़े थे। और अमरसिंह के अपने दो हजूरी सदा की तरह मुस्तैदी से हाज़िर थे। उनमें से एक अमर की बन्दूक़ उठाए था, जिस पर खाकी कपड़े की खोल चढ़ी थी और दूसरे हाथ में पुरानी 'जाज़ अलार्म' थी। बात यह थी कि कुँवर साहब अजमेर के मेयो कालिज में पढ़े थे, और चूंकि अंग्रेज़ी पढ़े थे, अतः वक्त के पाबन्द थे

और जहाँ जाते एक हज़ूरी इसीलिए साथ रहता । भेंट मुलाक़ात का समय याद दिलाने के लिए पहले से, नियत समय पर अलार्म-सुइयाँ स्थिर कर दी जातीं । उनका हज़ूरी एक हाथ में घड़ी लटकाए रहता । और कमबख्त हज़ूरी भी इस अदा से उस घड़ी को सम्भाले रहता, जैसे वह कुँवर साहब की नन्हीं बच्ची हो । फिर जब कुँवर साहब अपनी झोंक में उससे पूछते—"रामा" !

"हुक्म अन्नदाता ।"

"क्या बजा रे ?"

"साढ़े ढाई !"

"साढ़े ढाई ? हराम···अरे कोई है, लाना मेरी बन्दूक़ !"—वे जोर से चीखते और रामा जैसे गोली खाकर शहीद होने को प्रस्तुत हो, ऐसे निर्विकार भाव से सिर झुकाए खड़ा रह जाता । उसे आज तक घड़ी देखना नहीं आया था, खासकर आधा घंटा उसे परेशान करता और कुँवर अमरसिंह भी आज तक उसी से समय पूछते रहे थे । खुद गर्दन घुमाकर वे समय क्यों देखें ? भला, जब नौकर और घड़ी दोनों हैं तो क्यों कष्ट करें ? और ठाकुर कभी कष्ट करते हैं।

सजे हुए मरदाने कमरे में अमरसिंह मसनद के सहारे बैठे रहते जहाँ से वे उठते नहीं । वहीं सोते, वहीं शराब पीते और हुक्का गुड़गुड़ाते । वहीं भोजन का 'थाल' आता, वहीं चौसर बिछाई जाती और वहीं शतरंज जमतीं । वहीं बैठे-बैठे दिन भर में वे न मालूम कितनों को अपनी गाली और गोली का शिकार बनाते। बात-बात में तुनक उठते और कहते—"अरे, कोई है, लाना मेरी बन्दूक़ ।" कुँवर अमरसिंह काफ़ी

से ज्यादा मोटे थे। चेहरा बहुत बड़ा था। हाथ पर भारी, पर छोटे थे। पेट के आकार-प्रकार की कल्पना नहीं की जा सकती। वह देखने की चीज़ थी! लम्बी झब्बेदार, तेज़ मूंछें थीं, फुर्सत मिलते ही जिन्हें ऐंठा करते। उम्र में ज़रा अधेड़ थे पर आयु केशों में अभी पकी नहीं थी। रूप, रंग और स्वभाव में अपने पिता के विपरीत थे। वे क्रूर थे, ये कपटी थे—यहीं दोनों का मेल था।

अमरसिंह बड़े गुस्सैल थे, कुछ सरल भी थे। वे कम से कम बोलते और ज्यादा से ज्यादा हँसते। जो बात उनकी समझ में आती, उसके लिए तो हँसते ही; पर जो समझ में न आती उस पर भी हँसते, हाज़रीन पर अपनी समझ का रोब बिठाने के लिए! फिर हँसी के बीच, किसी नौकर की दैनिक त्रुटि पर सहसा उनका स्वाभाविक क्रोध जाग पड़ता और तब वे नीचे अपने अस्तबल में बँधे घोड़े-से हिनहिनाते—"अरे, कोई है, लाना मेरी बन्दूक।" होते तो कई, पर बन्दूक़ कोई न लाता, सब अदब से सिर झुकाए खड़े रहते। तब तक कुँवर साहब के मुँह में हुक्के की नली प्रवेश पाती और वे अपनी गुड़-गुड़ की साधना में लग जाते।

कुँवर अमरसिंह ही जागीर का सारा कामकाज देखते थे। ठाकुर साहब तो अपने एकांत जीवन में मस्त रहते। और जब से उन्होंने वनवास अपनाया था, तब से जागीर पर कर्ज़ चढ़ता ही गया! ठिकाने के काम में उनकी सहायता के लिए एक उर्दू-दां महाजन कामदार नियुक्त था, जिसकी नियुक्ति केवल इसी कारण कर दी गई थी कि वह खुशखत लिखता था और 'ज़ाब्ता फौजदारी' की पुरानी जिल्द उसे

कण्ठस्थ थी। कामदार बड़ा ही कामचोर और प्रपंची था। वह झुक-झुककर 'मुजरा हजूर' कहता! ठाकुरों के खड़े होने पर खड़ा हो जाता और बैठने पर बैठ जाता। ठिकाने के अदब को अपनी नाक पर थामे रहता। ठिकाने की आय में से न मालूम कितने रुपये वह हड़प कर चुका था। उसकी तनख्वाह पन्द्रह रुपये थी पर पचास रुपये का साफ़ा बांधता। शहर में दो पक्के मकान उसने बनवा लिए थे, पर लोगों को इस पर भी कुछ आश्चर्य नहीं था, क्योंकि आसपास की काना-फूसी द्वारा उन्हें मालूम था कि कामदार के घर के स्त्री-पुरुषों में दुश्चरित्रता कोढ़ की तरह फैल रही थी!

कामदार अजीब किस्म का हिसाब रखता, जिसमें जमा से अधिक खर्च बताया जाता और जो जमा था, वह सब उसके रिश्तेदारों का था और ठिकाने पर कर्ज लिया गया था और कर्ज के सूद की रकम उसी ने तय की थी।

रनिवास में चार ठकुरानियाँ थीं। चारों कामदार से पर्दा नहीं रखती थीं और वह उनसे घुल-घुल कर बातें करता। उनके लिए दसगुने दामों पर गोटा-किनारी और अहमदबादी पोलके (ब्लाउज़) लाता। प्लास्टिक के चप्पल, बेंदिया और चूड़ियाँ अपने छोटे भाई से बम्बई से मंगवाता और अपनी ठगाई की जड़ को मजबूत करता।

कामदार हर एक ठकुरानी के प्रसवकाल की औषधियों में सैकड़ों रुपयों का खर्च बताता। ठकुरानियों में भी बच्चे जनने में परस्पर होड़ थी। बड़ी यदि बांझ थी, तो शेष तीनों हर दसवें मास बच्चा देतीं। मझौली गर्मी में, छोटी बरसात में और उससे छोटी जाड़ों में जच्चा बनती। उनके सभी

बच्चों के चेहरे भिन्न थे, जैसे भैरव देव के गण हों ! ठाकुर से किसी का चेहरा नहीं मिलता था। ठकुरानियाँ रिसाले की उन घोड़ियों की तरह थीं, जिन्हें बँधे-बँधे ही दाना-पानी दिया जाता है। वे दिन भर सिंगार-साधना में लगी रहतीं। सर्वथा अनपढ़ और गँवार थीं। नित्य का गृह-कलह उनका मनो-विनोद था। पर वे बड़ी ख़ूबसूरत थीं ! एक्ट्रेसों की भला क्या गिनती ? हज़ारों वर्षों से पर्दे में रहने के कारण (पर्दा, जिसने सूरज की रोशनी भी नहीं देखी थी) उनके ख़ून में अजीब लाली आ गई थी और चेहरे में अनोखा नुकीलापन था। उनकी आँखें बूंदी की कटार की तरह थीं। उनकी कटि जैसलमेर की तलवार-सी थीं। उनका वक्ष कांठल के अनार और बीक़ानेर के संगमरमर सा था। उनकी चाल उदयपुर की हथिनियों-सी थी। और उनकी मस्ती में सर्वहारी आग थीं, जो भी पास आता, उसमें भस्म हो जाता। उनका ख़ून उन ऊँचे खान्दानों का था, जिन्होंने अपनी नारियों को केवल भोग की सामग्री माना था, उनकी रूढ़ परम्परा इसका प्रमाण थी। वे हर साल नए ब्याह रचाते और जिस तरह एक आम को ज़रा-सा चूस कर छोड़ देते, उसी तरह, न जाने कहाँ-कहाँ से बड़े-बड़े दहेज के साथ लाई गई कामिनियों को एक बार चूस कर रख देते। उन्होंने औरत को सदैव अपनी जायदाद माना ! औरत को सदैव दहेज माना और दहेज को औरत माना ! ठिकाने पर जब-जब कर्ज़ बढ़ जाता, वे विवाह कर दहेज कमाते, जिसका अधिकांश कर्ज़-चुकाई में चला जाता और शेष भाग के बल पर विलास की लौ जरा और तेज़ हो जाती। फिर कर्ज़ हो जाता और फिर दलाल 'बाई साहब'

के फोटो लाते ।

कुँवर अमरसिंह धर्मभीरु थे। जन्तर-मन्तर और जादू टोनों के कायल थे। पिछले साल उनके मन की कमज़ोरी पर एक बामन उन्हें ठग ले गया था। बात यह थी कि वे पड़ौस में रहनेवाली मास्टरनी पर रीझ गए थे और "ओम ह्लीं स्वाहाः" का मंत्र डेढ़ लाख बार जप चुके थे; पर मास्टरनी वश में नहीं आई। अपने को 'कुछ' समझती थी। यों एकदम काली थी। मराठिन थी। ऊपर से दांत बाहर निकला था। नाक जितनी बाहर थी, उतनी जड़ की जगह भीतर थी। विशेष उसमें कुछ था नहीं, लेकिन वह था, जो ठकुरानियों में नहीं था। वह पर्दा नहीं करती। गोल साड़ी नए ढंग से खींच कर लपेटती। तेज़-तर्रार थी। आँख छुरे की तरह और जीभ कैंची की तरह चलाती।

कुँवर के कमरे में दिन भर शतरंज जमती। "ये मारा, पौ बारा" की आवाज़ें उठतीं। और रात को जब गाने वालियों की ड्यूटी जनानखाने में होती, कुँवर की महफ़िल में सहस्र-रजनी चरित और बिल्वमंगल की कथाएँ चलतीं। भूत-प्रेतों, भूतिहा-मकानों, तिरिया-चरित्तों, ढाके-बंगाले के जादू-टोनों से लेकर अमरीका की अपार दौलत को लेकर मनगढ़न्त कल्पनाएँ और किंवदंतियाँ चलतीं। इस सारी परिचर्या के अन्त पर शराब का दौर चलता और तब तक चलता रहता, जब तक कि वे और उनके हमजोली मेहमान गाली-गलौज और मार-पीट पर न आ जाते। तलवारें निकाल लेते; पर वार नहीं करते। नशे में मदोन्मत्त भी मरना नहीं चाहता; जीना चाहता है। जीवन का मूल्य जानता है, तभी

तो मदिरा पान करता है ! कुँवर ने जब से होश संभाला बराबर 'मदिरा-पूजन' करते आ रहे हैं। पानी-पीना ब्राह्मणों के लिए बताते हैं।

इसी प्रकार दूसरी भोर होती और फिर साँझ आती। साँझ होते ही अँगिया-कुर्ती-लँहगे में सजी-सजायी ढोलिनें आतीं। वे विचित्र लटक से मटक-मटककर मुजरे करतीं और तभी ठिकाने का बूढ़ा चारन अपने मेघमन्द्र स्वर में सोरठा या दोहा पढ़ता—नमस्कार धीराँ नराँ, सूराँ रा सिर मौर; गढ़ बंका सिसोदिया, रण बंका राठौर !" अमर का हाथ, अनायास अपनी तलवार की मूठ पर चला जाता। फिर सबके स्वागत-सत्कार के लिए दारू आता। फिर ढोलिनें सब मिल कर अपने महीन-नाजुक और बेकरार कंठ-स्वर से मालवा की अल्मस्त सावनिया साँझों को बेचैन बना देतीं।

—इस प्रकार वर्ष, मास, दिन, पहर, पल अनेक विध बहती विलास लीलाओं में व्यतीत हो रहे थे, यह एक अन्त-हीन जलप्लावन था, जिसमें उनका पूरा वर्ग डूब-ऊब रहा था ! शहर के स्वतन्त्र और विकासमान वातावरण में पले अविनाश और अचला को अपने अज्ञातवास के अनेक दिन इसी वातावरण में बिताने थे। अविनाश तो दूसरे स्थान पर जा सकता और जाने वाला था; किन्तु अचला के लिए तो अन्य कोई शरण नहीं थी और अभी भारतीय-समाज-मण्डल इतना उदार और प्रगतिमय नहीं हो गया था कि किसी एकान्त, अनजानी बस्ती में एक अकेली लड़की को निश्चित रहने देता !

ठाकुर समरसिंह, अमरसिंह और कुमार अविनाश बड़ी

देर तक बातें करते रहे। अमरसिंह जान रहे थे कि अविनाश बहुत बड़ी रियासत का मालिक है और उनसे कई गुनी अधिक सत्ता, सम्पत्ति और सुख का स्वामी है, फिर भी, कितना विनम्र और सादा जीवन था उसका ! वे उसके सामने बड़े अदब से बैठे थे और समरसिंह भी बावजूद अपने राजनैतिक पुरातनावाद के, अविनाश की बुद्धि और उसके क़ानूनी ज्ञान से प्रभावित थे और उसकी बातें बड़े ग़ौर से सुन रहे थे। जब से अचला से उन्हें ज्ञात हुआ कि अविनाश ने विलायत में रहकर बैरिस्टरी की सर्वोच्च शिक्षा प्राप्त की है, तब से वे अपने चुप रह जाने को 'जरूरी-बुराई' मानने लगे थे। और ऐसे कई मामले और मसले थे, जिनमें उन्हें 'अविनाश कुमार-सिंह' की राय की ज़रूरत थी। अपने अनुभवी बोर्जुआ दृष्टि-कोण-द्वारा वे यह जान गए थे कि क्या हुआ जो, कुमार कांग्रेसी है, समय पर अपने वर्ग का स्वार्थ—सामन्तों की सत्ता और अस्तित्व का प्रश्न उसे भी मजबूर कर देगा कि वह समझौता करे और अपने विचारों-विश्वासों से दो कदम पीछे हटे ! दुनिया में कोरे सिद्धान्तवादी भावुकों ने भारी भाषण देने के अलावा और कुछ नहीं किया है। और बढ़िया भोजन, वस्त्र, विश्रामवास के पश्चात् जिस प्रकार की नेतागिरी की ललक व्यक्ति के मन में उठती है, उससे परे नहीं है अविनाश। यदि वह समरसिंह से मिल जाए और उनके दल में काम करे तो ! ··· ठाकुर समरसिंह की आँखें आनन्द से चमक उठीं !

अचला रनिवास में थी। वहाँ की सारी महिलाएँ, दासियाँ, परिचारिकाएँ, पातुरनियाँ और हजूरिनियाँ उसे घेर

कर बैठ गईं । सदैव पर्दे में पली राजघर की पर्दा-नशीन ललनाओं को अचला के बेपर्दा जीवन पर बड़ा विस्मय था ! लेकिन फिर भी वे उसका आदर कर रही थीं । एक तो वह इस घर की भाँजी; दूसरे बड़े घर की बेटी; तीसरे विदूषी—जहाँ सबकी सब अँगूठा लगाना भी न जानती थीं, वहाँ अचला की इतनी ऊँची पढ़ाई-लिखाई सम्मान का पदक थी । वे उसके रूप-रंग और रहन-सहन से पूर्णतया प्रभावित थीं । उससे विविध भाँति के प्रश्न करती थीं और अपना कौतूहल व्यक्त करती थीं । और इस सबसे अलग, इन सबमें नई एक और अचला थी—अमरसिंह की पत्नी, कुँवरानी शान्ति, वह कम पढ़ी लिखी थी, पर जिस घर से आई थी, वहाँ दुर्गा की शस्त्र-शक्ति से अधिक सरस्वती की वाणी-शक्ति की अर्चना की जाती थी । शान्ति के पिता रावराजा गोपालसिंह स्वयं सिद्धहस्त कवि थे । शान्ति ने अपने पिता का दुलार, बुद्धि और चातुर्य पाया था । वह रतनगढ़ के समाज में नई-नई आई थी और ठीक कीचड़ में कमल के समान थी !

रनिवास की महिलाएँ जब अचला के सामीप्य और सत्कार से मुक्त हुईं तो, शान्ति और अचला छत की चाँदनी पर चली गईं । वहाँ मुँडेर के सहारे खड़ी होकर दोनों दूर-दूर अनन्त क्षितिज तक निर्बन्ध फ़ैली ज्योत्स्ना का उभार देख-देख कर मुग्ध होती रहीं । गढ़ी से आध मील पर दक्षिण राजस्थान की सीमा मालवा की सरहद से गले मिल रही थी और बाईं ओर गुजरात का अन्तिम आँचल लहरा रहा था, पीछे की ओर अरावली की गिरिमाला मालवा के आँगन में उतरने की तैयारी कर रही थी ।

हवा रुक-रुक कर चल रही थी, जैसे अभिसार को जाती किसी गोपिका की मेंहदी मंडित पगतली में कोई काँटा गड़ गया हो ।



जैसा कि अचला का स्वभाव था, जल्द ही भाभी से उसकी मित्रता हो गई। शांति को भी इस बसे हुए वीराने में साथी की तलाश थी, जिससे उसके अछूते और सूने जीवन की शून्यता मुखरित हो जाय। आदमी उस समय बहुत मजबूर हो जाता है, जब वह यह मान लेना है कि वह अकेला और उदास है, जब उसके जीवन-प्रवाह की अनेक लहरों में से कोई एक तरंग भंग हो जाती है, तब वह अपने बोझ को हलका करने के लिए और अपने मन की पीड़ा को किसी स्नेही के मन में उँडेल देने के लिए अकुला उठता है। ऐसे समय अपनी आपबीती किसी संगी-साथी से कह-सुन लेने पर भग्न तरंग फिर से प्रवाहित होने लगती है। शांति की यही दशा थी।

धरती के बगीचे में दोपहरी का फूल झर कर, कुम्हला गया था और अब अपने ही थाले में उसकी समाधि बन गई थी। जिस डाली पर वह खिला था, वही उसका क्रॉस बन गई थी। मरण और जीवन के बीच की दीवार कितनी पतली है! दोनों के मध्य मात्र एक झीना पर्दा है, जिससे कभी मृत्यु झांक लेती है, कभी जीवन अपनी शक्ति आंक लेता है और यों ही जिन्दगी की धारा अनादि काल से अनवरत बहती आती है, जिसे कोई काट नहीं सका, जिसे कोई मार नहीं सका।

पुरवैया के एक झोंके ने जब शांति के कक्ष की उमस

को परे कर दिया और उसकी सालस पलकें झपक गईं तो अचला ने कमरे में प्रवेश किया। हल्की मोतिया साड़ी में वह बहुत आकर्षक लग रही थी और उसके गुलाबी ब्लाउज़ पर कजरारी केश-राशि लहरा रही थीं।

अचला ने देहली से ही जब शांति बहू को दुपहरिया की चैनभरी झपकी में प्रसुप्त देखा तो वह वहीं ठिठक कर खड़ी हो गई। शांति का रूप और उसका निर्मल सौन्दर्य अचला के लिए भी आकर्षण का बिन्दु था। दूज के चाँद की रूपहली धातु से खिंचे तार की तरह थी शांति, तन्वंगि और सुकुमारी। पतली नोकदार नाक और कर्णमूल तक फैली बड़ी-बड़ी आँखें मानों विधाता ने अपने वरदान में उसे भूल से दे दी थीं, और बाद में वे स्वयं पछताये होंगे कि इन्हें तो अपनी विधात्रि के लिए ही रख लेते! इस प्रकार, शांति में रूप और रस का एक अद्भुत मिलन हुआ था, जिसने उसकी छबि को सीमा-पार पहुँचा दिया था!

अमर ने छबि के इसी वैभव से विमोहित होकर शांति का वरण किया था; परन्तु अमर के जीवन में इतनी उलझनें और गांठें पड़ गई थीं कि वह अपने कुचक्रों में स्वयं उलझा था और बाहर के माया-जाल में इतना भटक गया था कि शांति के अछूते और पवित्र प्रेम में उसे कोई आकर्षण और आनन्द नहीं रह गया था। शांति का रूप, उसका सौन्दर्य, उसकी देह और उसका स्वभाव निरामिष था। अमरसिंह अपने पिता और पूर्वजों की परम्परा का प्रतीक बिगड़ैल बेटा था—उसका रस और उसकी परितृप्ति नारी के स्नेह, सौन्दर्य और समर्पण में नहीं, उसके नग्नभोग और वासना में थी।

वह हृदय और आत्मा का नहीं, देह की त्वचा और मांस का भक्त और भोक्ता था !

बात यह थी कि अमरसिंह सदा की तरह, पिछली रात भी घर से बाहर रहा था और जब वह बाहर रहा तो, अवश्य, शांति की नींद भी बाहर रही ! बड़ी रात तक वह खिड़की और बरामदे के बीच चकरी की तरह चक्कर काटती रही, लेकिन क्या उसके चक्कर काटने से अमर घर आ जाता ? प्रतीक्षा प्राय: इस पीड़क रहस्य की द्योतक है कि प्रताक्ष्य नहीं आनेवाला हैं, और ज्यों-ज्यों यह विश्वास घना होता जाता है कि परदेसी के पथ में हमारा कोई दुर्भाग्य बाधा बनकर खड़ा हो गया है तो निराशा की अँधियाली रात और भी सघन औरकाली होती जाती है ।

जब शांति राह देखते थक गई तो एक कुर्सी पर बैठ गई । उसने अपनी आँखें बन्द कर लीं और दूर के स्वप्न में खो गई । शांति जब छोटी बालिका थी, तब भी वह सपने देखा करती थी । निस्तब्ध निशा की प्रशांत पवन-लहरें, उसकी, विरह-ताप से प्रतप्त काया को और भी तपन दे रही थीं । शांति अपने आप में यह नहीं जानती थी कि वह कब तक इस प्रकार अपने पति की प्रतीक्षा करती रहेगी । ऐसा लगता था, जैसे वह जन्म-जन्मान्तरों से उसकी प्रतीक्षा कर रही है और अमर इसी प्रकार सांझ-और-तारों-भरी-रातों में घर से बाहर रहता है । अब तो ऐसा लगता है, जैसे उसके उनींदे लोचन प्रतीक्षा के इस तप के प्रति असहिष्णु हो उठे हैं, फिर भी, इतना तो स्पष्ट है कि शेष जीवन भी अमरसिंह की राह देखते बिता देना है कि वह एक दिन अपनी पत्नी

शांति के सूने कक्ष में भी पाहुन बने !

वह चाहे जब आए, शांति को इसी विशाल और पाषाणमयी गढ़ी की पथरीली कारा में रहना है। शांति जानती है कि उसका पति उसी सामन्तवादी परम्परा का प्रहरी है, जिसने अपने खेत-खलिहानों, बाग-बगीचों, कुएँ-तालाबों और गाय-वकरियों के पशुधन की तरह नारी को भी हमेशा स्त्री-धन माना है। नारी उसके जीवन में स्वर्ण-किरण बनकर कभी न आ सकी। वह जब आई, तब विलासवाहिनी के रूप में, भोग और तुच्छ तृप्ति की बाती बनकर !

अचला ने अपने बैठने के लिए, जब कुर्सी खींची तो उसकी हलकी-सी आवाज़ से शांति की नींद उचट गई। वह हड़बड़ा कर उठ बैठी और अचला को भर नयन देख कर मुस्करा दी। विगत रात्रि की वेदना और बोझिल थकान के बाद अचला का संग उसे सम्मोहक लगा। अपनी साड़ी की सिलवटें ठीक करते हुए वह बोली—

"आओ बहन, मैं तो तुम्हें बुलवाने ही वाली थी। इस मठ में अकेले बैठे मेरा जी घुट रहा था। तुम तो जानती हो···" इतना कहते शांति की शरबती आँखें भर आई और अचला का मन भर आया, क्योंकि वह शांति के जीवन की जटिलता को जानती थी और पुरुष की निर्मम कठोरता को पहचानती थी। फिर भी अचला को ऐसा लगा, जैसे वह इस व्रतवती नारी को अपनी यदा-कदा ही आनेवाली नींद से जगाकर, अपराधिनी बन गई है ! लेकिन उसने देखा, रात की कठोर वेला और काली घड़ियों के बावजूद भी शांति के मासूम चेहरे पर एक अजीब आभा और चमक थी, चमक,

जो जीवन में कभी हार न माननेवाले संघर्षी के मुखमण्डल पर रहती है।

"तो क्या, आज भी भैया नहीं आए ?"

"जी।"

अचला कुछ कह न सकी। अविवाहित वह थी, फिर भी विधाता ने स्त्री को दूसरी स्त्री के मर्म की पीड़ा पहचान लेने की जो क्षमता दी है, उसका काफी अंश अचला को भी मिला था, किन्तु अचला आज के उस आधुनिक वातावरण में पली थी, जहाँ स्त्री-पुरुष की संगिनी समझी जाती है। वह इस बात की कल्पना भी नहीं कर सकती कि आज भी स्त्री पुरुष की उसी प्रकार दासी है, जिस प्रकार वह आदि या मध्य युगों में थी। यह ठीक है कि प्रकृति ने स्त्री को सुन्दर एवं सुकुमार आकार-प्रकार और स्वरूप दिया है, परन्तु वह इसलिए तो उसे नहीं मिला कि कोई उसका मनमाना उपभोग या उपयोग करे, वरन्, उसका हेतु यह भी तो हो सकता है कि पुरुष उसका अभिनन्दन करे ! नारी पुरुष के जीवन के समस्त अभावों की पूर्ति है। ऐसी दशा में यह स्वाभाविक है कि प्रकृति पुरुष को भी यह स्मरण दिलाए कि वह नारी-जीवन के चिर अभाव का पूरक है ! और संसार दोनों के योग और अस्तित्व का प्रमाण है।

"क्या सोचने लगी ?"

"कुछ नहीं, मैं कहना चाहती थी कि तुम इस प्रकार अपने नारीत्व का निरादर कबतक सहती रहोगी ?"

शांति ने अपनी बड़ी-बड़ी बरौनियाँ तनिक झुकाकर कहा—"बहन, पुरुष को लेकर नारी के जीवन में आदर-निरादर की

तो कोई बात नहीं है। हमें तो सिर्फ़ यही देखना है कि हम स्वयं अपने पिता, पति या पुत्र की सेवा कहाँ तक कर सकती हैं ? हमारा अपना जो देय है, उसे तो देना ही पड़ेगा। उसी में हमारी गति है और गति के प्रवाह को रोक कर क्या होगा ? नदी की धारा रुकने से सडाँद आ जाएगी और जीवन का मार्ग अवरुद्ध हो जाएगा। इसलिए, हमें यह न सोचकर कि सामने वाले का यानी पुरुष का कर्त्तव्य क्या है, यह सोचें कि हमारा अपना कर्त्तव्य हमें क्या कहता है, और न चाहते हुए भी, मैं इतना तो कहूँगी कि पुरुष तो अनादि से ही कठोर और निर्मोही है।"

तभी बरामदे में किसी के आने की आहट सुनाई दी। दोनों ने देखा—द्वार पर बूआ जी खड़ी हैं।

बूआ इस गढ़ी की दीवारों की तरह, रावले के परिवार की आवश्यक आधार-शिला थीं। उनका जन्म यहीं हुआ था, बचपन यहीं बीता था और जब उनके पति—अपनी किसी वनवासिनी प्रेमिका के पति—द्वारा गोली के शिकार हुए तो, बूआ का पूरा यौवन गढ़ी की दीवारें चाट गईं, जिनमें रंग-रोगन के रूप में एक नई चमक आ गई, और दीवारों की पाषाणी कठोरता विधवा बूआ के तन-मन में भर गई। इस कठोरता ने उन्हें मनुष्यमात्र के प्रति घृणा, तिरस्कार और अवज्ञा से भर दिया। मनुष्य में जो अनदीखा पशुत्व सोया है, वह बूआ बा में जाग गया था।

बूआ की आदत थी कि वह बात करने से पहले, क़समें खाती थीं, और क़समें खानेवाला व्यक्ति जितना झूठा हो सकता है, उतनी झूठी वे थीं और जितनी क़समें खाती थीं, उतना

रोती थीं। और जितना रोती थीं उतनी क़समें खाती थीं। उनकी देह बहुत भारी और स्थूल थी। उम्र कोई ६०-७० के बीच होगी।

बूआ एक दायरे में रही थीं और इसलिए सीमा और घेरे उनको इष्ट थे। सीमा से बाहर निकलने की उन्होंने कभी कोशिश न की थी और न किसी को निकलने देना ही चाहती थीं!

शांति और अचला बूआ को देखकर उठ खड़ी हुईं। अपने भारी भरकम शरीर को इजी चेयर पर टिकाते हुए, बूआ ने एक लम्बी उसांस भर कर 'ओह' कहा, मानो उन्हें हिमालय उठाना पड़ा हो!

शांति जानती है कि जब से वह इस घर की बहू बनकर आई है, तब से बूआ उससे अजनबी की तरह व्यवहार करती रही हैं और हमेशा उसे अपने कुलवंश से नीच दर्जे की समझती रही हैं। बूआ और उनके परिवारकों के पास अब वंश के झूठे गौरव और रक्त-सम्बन्धों की शान और कुल की मान-मर्यादा की कहानियों के सिवाय और क्या रह गया था? यह तो ठीक उस तरह था कि कोई सड़क पर बड़ी-सी सीढ़ी लेकर विहरण करे, और लोग कारण पूछें तो कहे कि इतना भी नहीं जानते, हमारे पूर्वज बड़े श्रीमन्त थे, उनके यहाँ बड़े-बड़े हाथी झूमते थे, जिन पर चढ़ने लिए ऐसी २ सीढ़ियाँ काम में लाई जाती थीं। सो वह हाथी तो रहा नहीं, सीढ़ी ज़रूर रही है। और बूआ के हाथ में तो वह भी न हीं है, इसलिए उसकी कल्पना और किंवदन्ती से अपने मन की मजबूरी को भर लिया करती हैं।

"मैंने कहा, जरा देख आऊँ, बहू क्या कर रही हैं ?"

"सो तो ठीक किया आपने"—अचला ने कहा।

लेकिन शांति का मन कम्पित था। वह जानती थी कि बूआ जब आएंगी, तब एक न एक खटपट अपने साथ लाएंगी।

"तो तुम क्या कर रही थीं, बहू, जरा सुनूँ ?"

शांति जो कल सांझ और रात से जली-भुनी बैठी थी, उसे बूआ का यह प्रश्न अच्छा न लगा, चिढ़कर बोली—"मैं उनकी राह देख रही थी।"

"नारायण तेरा नाश करे, मेरे बैरी!··· बहू, इसमें राह देखने की कौन-सी बात थी ? अमर किसी सरकारी काम में उलझ गया होगा। अकेला आदमी, और जीव को सौ-सौ जंजाल हैं। नारायण तेरा नाश करें···!"

"सरकार के दफ़्तर रात में नहीं खुले रहते।"

अचला ने देखा, शांति की वाणी में पर्याप्त तिक्तता और खटास है। लेकिन यह खटास उस प्रकार लायी गयी है, जिस प्रकार मधुर दूध में कोई जामन डालकर उसे दही बना दे और वह दही समय की लम्बाई से खट्टा हो जाय, पिछले एक वर्ष की अवधि में शांति के मन की भी यही दशा हुई थी।

"तो क्या तुम चाहती हो कि मेरा बेटा तुम्हारे चरणों का चाकर बनकर नाचा करे और कमज़ोर कुत्ते की तरह दुम दबाकर तुम्हारे हुक्म को झेला करे और तुम अपनी इस सेज पर पैर पसारे पड़ी रहो और उस पर जुल्म बरसाया करो, नारायण तेरा नाश करें···!"

जैसी कि शांति की प्रकृति थी, वह एक सीमा के आगे कटुता का साथ न दे सकी, सो बूआ के ताने-बाने से मुरझा

गई। एक तो रात्रि की समस्त वेदना और एकांत की अपमान-भरी काली परछाइयाँ और दूसरी ओर बूआ की यह निष्ठुरता! दोनों ने मिलकर शांति के कुँआरे अन्तर को झकझोर दिया। वह सुबुक-सुबुक कर रो उठी। और अचला दोनों को देखती रह गई।

"यह चरित्तर तू किसी दूसरी जगह दिखाना री! मैं तो पहले दिन ही जान गई थी कि इस छोकरी के साथ मेरा अमर सुखी न हो सकेगा। वह भी क्या औरत जो मरद को अपनी ओढ़नी से बाँधकर रखना चाहे और मरद, चाहे वह अमर हो या और कोई, यदि वह औरत की बताई लीक पर चलता है तो उसका जीवन धिक्कार है!"....लेकिन, इस बार 'नारायण तेरा नाश करे...' न कहकर बूआ बुरी तरह फूट-फूट कर रोने लगी। शांति और अचला जानती थी कि आँसू तो बूआ के पल्ले बँधे रहते हैं, जब चाहा गाँठ जरा ढीली की और उन्हें बाहर ढुलका दिया!

इस बातचीत के बीच अचला खिड़की की रेलिंग पर कोहिनी टिकाए बाहर खड़ी हो गई थी। वह दूर-दूर, निर्जन अनन्त की ओर निहार रही थी। सहसा उसका ध्यान भंग हुआ जबकि उसने पहाड़ी के ढाल पर घुड़सवारों को आते देखा। वह कमरे की ओर मुड़ते देख बोली—"भाभी, भैया आ रहे हैं।"

यह सुनकर तो बूआ को अपनी बात बढ़ाने का मौका मिल गया—"देखा न, मैंने कहा था, कुँवर आता ही होगा। लेकिन तुम्हें अपनी ही हठ और ज़िद प्यारी है। स्त्री का हठी होना अच्छा नहीं। तुमने तो रो-धोकर सारा ज़माना सर पर

उठा लिया था और चाहती थीं कि कुँवर को पराए लोगों की नज़रों में गिरा दो। अरे नारायण ! ऐसी स्त्री मैंने कहीं नहीं देखी, जो अपने ही पति पर सन्देह करती हो और उसके सरकारी काम में बाधा डालती हो !"

बूआ पति के देवत्व और पत्नी के सतीत्व का जिक्र इस प्रकार करती थीं, मानो उन्होंने पूरा जन्म पति-सेवा में बिताया हो ! साथ ही, अपने इस नैहर का गौरव प्रकट करने के लिए वह बार-बार 'सरकारी काम' का उल्लेख करना नहीं भूलती थीं।

शांति बोली—"सन्देह तो मैं नहीं करती और विश्वास लेकर चलना ही हमारी रीति है। खैर, जाने दीजिए, आप इस बात को नहीं समझेंगी।"

बूआ बिजली के टूटे हुए तार की तरह एक झटके में उठकर खड़ी हो गईं—"हाँ, हाँ, दूधमुँही बच्ची हूँ कि तेरी ज़रा सी बात नहीं समझूँगी, बहू। यह बाल मैंने धूप में सफेद नहीं किए हैं !"—और ज्यों ही सीढ़ियों पर चढ़ते कुँवर अमरसिंह के पैरों की आहट स्पष्ट सुनाई दी, त्योंही बूआ ने अत्यन्त तीव्र, करुण और बेसुरे स्वर में सिसकना और हिचकियाँ लेना शुरू कर दिया। उनकी आँखों से अश्रुधारा इस प्रकार फूट रही थीं मानो उन्होंने रुके हुए प्रवाह का स्विच ऑन कर दिया हो। उनके मुँह से लार टपकती थी और नाक का बहता पानी उसमें मिलकर और भी वीभत्स दृश्य की संगम-रचना कर रहा था !



६

पिछले कुछ ही दिनों के सम्पर्क से अचला यह तो जान गई कि मामा असाधारण प्रतिभा के धनी हैं, परन्तु उनकी प्रतिभा ने सदैव आसुरिक शक्तियों की गोद में पोषण पाया है। अतएव उसके अमानवीय तत्त्व प्रबल हैं और सहज मानवीय गुण अबल हैं, इसी से उनकी शक्ति कलंकित हुई है। फिर भी इतना तो स्पष्ट है कि यदि ठाकुर समरसिंह पढ़े-लिखे होते तो, अवश्य कहीं के लाट-गवर्नर होते! किन्तु जब मामा ने शाला का पथ पकड़ा था तब अंग्रेजी उनके पिता की पहुँच के परे थी। अथवा यों कहें, वे अंग्रेजी की पकड़ से बाहर थे और उसे सदैव म्लेच्छ-भाषा कहते थे।

"लेकिन, हिंदुस्तान एक अजीब देश है, जहाँ म्लेच्छों का राज्य और धर्म भी जल्द फैल जाता है!" ठाकुर समरसिंह ने उस दिन अचला से अपनी बातचीत के दौरान में कहा था।

अचला ने यह जानते हुए कि मामा पराए धर्म, संस्कृति, भाषा और भेष के कितने प्रबल विरोधी हैं, कुछ न कहा।

फिर वे बोले—"देखो अचला, इन दो-एक सप्ताह में तुमने बड़ी गढ़ी और छोटी हवेली का जीवन देख लिया है। और यह स्पष्ट है कि तुम हमारे रंग-ढंग देखकर एकदम ऊब गई हो, फिर भी, जेल और अपमान से सुरक्षित रहने के लिए रतनगढ़ के इस किले में आई हो! यह कैसा विचित्र योगायोग है कि कभी-कभी हमें उसी व्यक्ति, वस्तु या स्थान से सुरक्षा मिल जाती है, जिससे हम सब से अधिक घृणा करते हैं,

जिसे लेकर हमारा मन तिरस्कार से भरा रहता है। यह तो ठीक वैसी बात है कि श्मशान में किसी को जीवनदान मिले। परन्तु यह सच है कि इन्सान यदि जीते जी कभी-कभी श्मशान वास कर लिया करे तो उसकी ज़िन्दगी की गलत राहें काफ़ी बदल सकती हैं। तुम्हें कबीर का वह दोहा याद होगा, जिसमें उसने देह की विनश्वरता और दुनिया को लेकर अपनी उदासीनता का जिक्र किया है—सुन्दर केश घास की तरह जल जाते हैं; हड्डियाँ सूखी लकड़ी की तरह भस्म हो जाती हैं; सारी दुनिया ही जलती है और ऐसी जलती दुनिया को देख कर कबीर का जी उदास हो जाता है। ऐसी ही उदासीनता भगवान् बुद्ध के अन्तर में समाई होगी, जिस रात वे यशोधरा की रेशमी सेज छोड़ कर, रूखी मृगछाला के लिए निकले थे।"

"किन्तु, मामा साहब, आज का जैसा हमारा जीवन है, उसमें उदासीनता और कोरे वैराग्य से काम न चलेगा। हमें गीता के कर्मयोग का अनुष्ठान रचना होगा।"

"मैं इसी ओर आरहा था; सब में रहते हुए, सबसे अलग, निर्लिप्त हमें उठना होगा। जिसे मोह है, उसे स्वार्थ है। और कर्मनिष्ठ कभी स्वार्थी नहीं होता। कर्म स्वयं परमार्थ है। लेकिन, जाने दो, मैं अनपढ़ आदमी इस योग्य नहीं कि तुमसे तत्त्व-चर्चा करूँ! मैंने तो यह सब सन्तों के समागम से पाया है। और ऐसे भाग्य कहाँ कि इस पर अमल कर सकूँ।"—कहते-कहते ठाकुर ने एक निश्वास ली।

अचला को यह मालूम हो गया था कि किन्हीं मामलों के कारण ठाकुर क़ानून की नज़र में अपराधी हैं। परन्तु उन मामलों और कारणों से अचला अनभिज्ञ थी।

तब ठाकुर समरसिंह ही आगे बढ़कर बोले—"अचला, हमारे घर में—तुम्हारे नाना के कुल में योग का ज्ञान-मान रहा है, परन्तु उनका भाग्य ही कहो कि वे अपनी सत्संगति का लाभ लेने में असमर्थ रहे हैं, चाहे परिस्थितियों के वश, चाहे अपनी मजबूरियों के कारण, और हमेशा बुराई में जिए हैं।"

"नहीं जी, यों न कहिए। आप समाज की बुराइयों के लिए, व्यक्ति को दोष नहीं दे सकते। सारा दोष देश और समाज की उन अवस्थाओं का है, जिन्होंने व्यक्ति को इस सीमा तक बुरा बनने को बाध्य किया है। व्यक्ति समाज का सदस्य है। समाज का आधार व्यक्ति है, यह सच है, परन्तु समाज के बिना व्यक्ति निराधार है। व्यक्ति को समाज के लिए बलिदान देना है और समाज को व्यक्ति के लिए वरदान सिद्ध होना है।"

"अतएव, रतनगढ़वालों के पतन के पीछे लम्बा सामाजिक इतिहास है, परम्पराएँ हैं, सीमाएँ और कुरीतियाँ हैं। उनका पतन समस्त राजपूत जाति का पतन है। जीवन की राह में चलते-चलते एक या दो व्यक्ति गिर सकते हैं, परन्तु जब पूरा परिवार और सन्तति की सारी पीढ़ियाँ पतनोन्मुख देखी जाती हैं तो यह समझना चाहिऐ कि देश की सामाजिक व्यवस्था में, अर्थ और नीति की व्यवस्था में, वर्ग और वर्ण की योजना में—कहीं न कहीं, कोई परिवर्त्तन अवश्य आया है, अथवा गति में अवरोध आ गया है जिससे अवगति हुई है!"

"तथापि, व्यक्ति को अपना दोष तो देखना ही चाहिए।"

"अकेले दोष देख लेने से क्या होगा? जब उसके मन में

सुधरने-बदलने और पश्चाताप की तैयारी नहीं होगी ?"

"सो तो ठीक हैं ।"

"इसीलिये मैं कह रही थी कि हमारे आभिजात्य सामन्त वर्ग के पतन के पीछे वह विलास और अनाचार है, जो मुग़ल-शासन के साथ जन्मा था ।

"मध्यकालीन मुग़ल-सत्ता के विरूद्ध राजपूती पराक्रम, प्रताप और बलिदान देश की स्वतन्त्रता और आन का प्रतीक बन गया था ।··· मुग़ल शासन की मज़बूत नीवों ने जहाँ देश को व्यवस्था दी, वहाँ उन्होंने अपने वशवर्ती राज्यों को बाहरी आक्रमण के भय से अभय कर दिया था । राजपूत चाहते तो लिच्छवियों के समान अपने संगठन के द्वारा अभय रह सकते थे, परन्तु विदेशी मुग़लों की छत्र-छाया उनकी निर्बलता की निर्भयता के लिए आवश्यक हो गई थी ।···बाहर से सुरक्षित होकर राजपूतों की शक्ति मुग़लों-द्वारा आविष्कृत विलास-मार्ग पर निर्द्वन्द्व दौड़ चली और वह इस वेग से गिरकर मूर्च्छित हो गई कि उसको आज तक सुध न आई, उसकी नींद आज तक न खुली !"

ठाकुर समरसिंह इस अज्ञातयौवना भाँजी की बात बड़े ध्यान से सुन रहे थे, जिसने अपनी माता का सुकोमल हृदय और पिता का विचक्षण मस्तिष्क पाया था और उन्होंने सोचा, अवश्य इसमें अपने ननिहाल का हठ और दुराग्रह भी कहीं छिपा होगा । बोले—

"ठीक है । तुम्हारे इतिहास की इसी कड़ी से हमारे कुल की कथाएँ जुड़ी हैं । देखो न, आजतक रतनगढ़ की गढ़ी का कोई वारिस बिछौने पर तड़प कर नहीं मरा । हमारे प्रथम

पूर्वज, राजा जसवन्तसिंह के साथ, पठानों से लड़ते हुए काम आए थे। तब से जैसे मैदान में ही मरने का हमारी परम्परा बन गई।"

"मेरे परदादा के पिता—क्या कहेंगे उन्हें—खैर, जाने दो, उनकी सीमाएं थीं पर उन्होंने कभी उन्हें स्वीकार नहीं किया। वस्तुस्थिति को इस प्रकार ठुकराने से उनका अन्त आया। मेरे परदादा जितने दुराग्रही थे, उतने ही बलवान और हठी थे। ··· एक बार रियासत के राजा जी के यहाँ कन्नौज से इत्र के कुछ सौदागर आए। घटना यह १८०५ की होगी, जब फिरंगियों से देशी राज्यों की सन्धियाँ नहीं हुई थीं और दिल्ली के तख्त पर बादशाही थी।"

"राजा जी ने इत्र फरोश से मजाक में कह दिया—'हमें इत्र का शौक नहीं है, इसका शौक तो रतनगढ़ के रावले को है, जाओ वे तुम्हारा सारा इत्र खरीद लेंगे। राजा जी की बात सुनकर सारे दरबारी खिलखिला उठे। जब इस घटना के संवाद के साथ इत्र फरोश रतनगढ़ पहुँचे तो परदादा मन ही मन बड़े क्रुद्ध हुए पर राजा जी के प्रति स्वामिभक्ति थी। बोले सौदागर से—"अच्छा दरबार अन्नदाता (महाराज) ने ऐसा कहा है, तो जैसा हुक्म, हम तुम्हारा सारा इत्र खरीद लेते हैं। जितनी पेटियाँ हों सब हमारी घुड़साल में छिड़कवा दो।" इसके पश्चात् उनके रहने और खाने-पीने का प्रबन्ध कर दिया गया।

"जब इस प्रकार दो मास बीत गये तो परदादा को चुकारे की चिन्ता हुई। उन्होंने अपने चुने हुए साथी लिये और दिल्ली पहुँचे। जौहरी बाजार के बड़े से बड़े जौहरी की

दूकान पर जाकर हीरे के हारों का मोल किया और कहा कि इन्हें लिये जाते हैं रतनगढ़, जिसकी ताकत हो, हमें रोक ले।

"उनके घोड़े हवा से बातें करने लगे। शाही सिपाही पीछे-पीछे दौड़े। रास्ते में मंडी में नाज-लदी गाड़ियाँ खड़ी थीं। सरकारी सिपाही हो-हल्ला मचाने लगे कि जल्दी गाड़ियाँ हटाकर रास्ता दो। गाड़ीवानों में से एक ने चिढ़कर कहा—"—मियां, क्यों नाहक जान गंवाने निकले हो ? तुम्हारे उन आकाओं के घोड़ों ने इन सभी गाड़ियों को लांघकर रास्ता बना लिया था, तुम कब तक उनको पकड़ पाओगे ?"

अचला अपनी मां के पूर्वजों के शौर्य की यह किंवदन्ती सुनकर प्रसन्न थी। अपने यश और हित के अवसर पर व्यक्ति यह नहीं देख पाता कि इससे कहीं किसी का अपयश और अनहित तो नहीं हो रहा है! अचला कहने लगी—"यह उनका अदम्य साहस और अतुल बल था।"

"और सुनो, बात यहीं खत्म नहीं होती। जब से रतनगढ़ की इन नभचुम्बी पाषाणी चट्टानों के सहारे यह गढ़ी बनी, तब से जैसे राठौरों का इतिहास ही बदल गया।

"तुम्हें हमारे कुलवालों पर दया आती होगी। लेकिन, तुम्हारे 'विलायत पलट' पिता यदि इस गढ़ी में जन्मे होते, तो उनमें भी इतना ही हठ और ऐसी ही कठोरता होती! देखती हो न, ये चट्टानें! एकदम काली, चिकनी और सीधी! इनकी छाया में हमारे रणवीर पूर्वजों के मन में जाने कितनी लड़ाइयाँ जीतने की लालसाएँ जागी होंगी! सिर का सौदा करने वाले वैसे सरदार अब पैदा नहीं होते!"

—इतना कह, ठाकुर समरसिंह जैसे उन चट्टानों को—उनके प्रति स्नेह से गद्गद होकर, निर्निमेष दृष्टि से देखने लगे। फिर बोले—"परदादा तक ही यह परम्परा रही। दादा तो मुझ-से निकले। फिरंगी साहब की हत्या के लिए उन्हें सूली दी गई। फिरंगी की वह बड़ी-सी कब्र तुमने देखी होगी देवगढ़ के रास्ते पर। अपनी मेम के साथ वह वहीं दफ़न किया गया और दादा की तलवार का घाव आज भी उसकी कोढ़भरी देह में कसक रहा होगा। हाँ, उसकी मेम को मार-कर उन्होंने ठीक नहीं किया। औरत आखिर औरत है!… लेकिन, दादा से हम नफरत नहीं कर सकते, क्योंकि हम अच्छी तरह जानते हैं कि यह वीरता या पागलपन इस बस्ती की हवा और मिट्टी में बसा है। मेरे दो भाई और थे, मुझसे बड़े। दोनों लड़ते हुए काम आये और लोग कहते हैं, आज भी आधी रात में गढ़ी के परकोटे के नीचे शत्रुओं को काटती हुई उनकी झनझनाती तलवारें देखी जा सकती हैं। उनकी ललकारें सुनाई पड़ती हैं। तुम कभी घर से बाहर अकेली न निकलना यहाँ, और रात्रि में अपने कमरे में पलंग पर पड़ी रहना। यह राठौरों का रंगमंच है। जो कुछ देखो-सुनो-परखो अपने तक ही रहने देना। उसके बारे में दूसरों के सामने सांस भी न लेना। वरना, तुम्हारी काया को प्राणों से बिदा लेनी पड़ेगी।… अच्छा सो जाओ।"

अचला का मन भयभीत हो चला था, सो, जब वह सो गई तो नींद उसे न आई। बड़ी देर तक, बड़ी मूंछोंवाले बलिष्ठ देहधारी पूर्वज उसकी बड़ी-बड़ी आँखों में घूमते रहे। उसे याद आया कि कई दिनों से अपने कमरे के नीचे, खोह

में इमली के झुरमुट में जैसे वह किन्हीं लोगों की हलचल सुनती रही है और जब बारी में से उसने झांककर देखा तो पाया कि एक मद्धिम रोशनी वहाँ जल रही है। समरसिंह का घर गढ़ी में और भूत का घर इमली में! भूतों के भय से विज्ञान की छात्रा का संत्रस्त होना सहज न था, तथापि, उसका जी घबराने लगा और आँखों-आगे विचित्र आकृतियाँ चल-चित्रों-सी फिरने लगीं। वे नाना रूपों और प्रकारों में बहु-रंगी वेश धरे उसके सामने आईं—खिलखिलाती, अट्टहास करती। नाचती, गाती। रीझती-खीझती। तलवारें चमकाती, वीभत्स-स्वरूप दिखाती।—अचला भय से चीख उठी। पलंग की एक पाटी पकड़कर दुबक गई। आँखें मूंद लीं।···इसके बाद, आकृतियाँ धुँधली पड़ती गईं। पूर्वजों के महामुच्छधारी मुखमंडल मन्द पड़ कर ओझल होते गये, परन्तु वह अविनाशी रात द्रौपदी के आँचल-ज्यों फैलती गई, फैलती गई····· फैलती गई!

गाढ़ी के बाहर बरगद, के पेड़ के नीचे, जहाँ चौकीदार बैठता है और पानी, पवन, धूप तथा दिनमान के सहारे—पेड़ की नीची डाल से लटकी घड़ियाल बजाता रहता है, उसके चबूतरे के पास, जमीन में गहरे-गड़े खूंटे से बँधा अमरसिंह का घोड़ा हिनहिना रहा था।

अचला चली गयी थी और बूआ अपनी कुर्सी पर फिर से जमकर बैठ गई थी और काली साड़ी के आँचल से मुंह और आँसू पोंछ रही थी।

शांति पर्दे की ओट हो गई थी।

बूआ के शाश्वत रुदन और अस्तित्व की ओर ध्यान न देकर, कुंवर अपनी पत्नी के कमरे की ओर चला गया। शान्ति उठकर खड़ी हो गई। आज कई घड़ियों की अनुपस्थिति के बाद उसने पति को देखा था। जिसका मुख मुरझाया हुआ था, दाढ़ी बढ़ आई थी और सिर पर रूखे केश परस्पर उलझे थे। उसकी आँखें यह बताती थीं कि वह कई दिनों से नहीं सोया है और इस समय तो अपने बलबूते से बाहर है, क्योंकि उसने काफ़ी से ज्यादा पी ली है। इस वेष-भूषा और अवस्था में भी शांति को अपना पति प्रिय और आकर्षक लगा, क्योंकि वह पति था। उसका यह ऊपरी दर्शन तो उसके बाह्य आवरण और स्वभाव का द्योतक था। शांति को अमरसिंह का शरीर, उसकी आँखें और भौंहें मनोमोहक लगते थे। शांति जानती है कि न जाने कितनी रातें

उसने इस सुख की कल्पना करते व्यतीत की है। वास्तव में, शांति बड़े सरल स्वभाव की लड़की थी और उस घर से आई थी, जहाँ उसे पति की सेवा में ही पत्नी की मुक्ति बतलाई गई थी। इस प्रकार शांति अमर के पंगु जीवन की परछाईं बनने का प्रयत्न कर रही थी और इस प्रयत्न में वह स्वयं अपने जीवन की रेखा को मिटाती जा रही थी। शांति का अकाम मन पति की ओर प्रेरित हुआ। उसके पैर लड़खड़ाते देख शांति ने आगे बढ़ कर उसका हाथ थामकर उसे सहारा देना चाहा लेकिन अमर ने उसका हाथ झटक दिया—'दू-र ... ह: · · ट्टो'

"आपकी तबीयत कैसी है ?"

"तबीयत हा · · हा · · हा !"

"तबीयत कैसी है आपकी ?

"तुमको क्या पड़ी—ही—ही—ही !"

"आप नहा लीजिए और · · ·"

"अपने चरित्र किसी और को दिखाओ · · · इस घर में यह रीति नहीं चलेगी ! · · · हाँ · · तुम्हारी टांग तोड़ दी जायगी · · · समझी ! इस हवेली के मर्द अपनी मर्जी के मालिक हैं। तुम उनकी राह में मत आना वरना मिट जाओगी। · · · · हट्टो।"

अमर उसे ढकेल कर अपने कमरे में चला गया। शांति की आँखों में आँसू छलछला आए। क्या इसी 'पति' के लिए उसने बालापन में पीपल की पूजा की थी ? व्रत-उपवास रखे थे ? कार्त्तिक-स्नान किया था ? और तुलसी के पौधे को पानी पिलाया था ?

शांति वहीं खड़ी रह गई !

उसके आसपास अन्धेरे की गहराइयाँ घनी होती जा रही थीं और उनकी परछाइयाँ उसके हृदय पर पड़ती जा रही थीं। वह सोचती रही—पिछले कई दिनों से उसकी कामना थी कि इस बार मिलने पर वह अपने पति से जी भर कर बातें करेगी, उससे पहले मान करेगी, रूठेगी। और जब वह मनुहार करेगा और उसकी चिबुक उठाकर, आँखों में अपना प्रतिबिम्ब देखकर, न रूठने की विनती करेगा, तब शांति शिकायत करेगी कि ऐसा क्या राज-काज, जिसमें अपनी काया-माया की भी सुध नहीं। खाना-पीना-नहाना भी तो आदमी के लिए ज़रूरी है। और यह भी जरूरी है कि यदि वह पति है तो दो पल अपनी पत्नी के निकट बैठकर उसकी कुछ सुने और अपनी कुछ कहे, जग-जीवन की बात करे। और यह भी ज़रूरी है कि यदि वह पिता है तो बाल-शिशुओं को रिझाए-खिझाए, उनके साथ खेले ! लेकिन अमर' ' 'शांति ने एक गहरी, लम्बी और उष्ण उसांस ली। मान-मनुहार और शिकायतें गईं' ' 'उसे प्यार के दो बोल नसीब न हुए। क्या सब के पति ऐसे ही होते हैं ? क्या सब पति ऐसे ही होते हैं ? क्या यही उनका प्रेम और व्यवहार है, जिसके पुण्य की कथा उसने अपनी माँ-बहनों के मुख से सुनी थी ? 'नहीं' उसके अन्तर से एक आवाज़ आई—'नहीं !'

और वह कितने दिनों से बेचैन रही है कि इस बार उसे पति के स्नेह और सामीप्य के सहारे की आवश्यकता होगी। वह अपने-तन और मन की समस्त रिक्तता को भर देना चाहती है। क्या कारण है कि कुंवारेपन का शून्य अब भी

उसमें घहरा रहा है ? इस सूनेपन से तो दूर वह कहीं भाग जाना चाहती है और इसी से परित्राण पाने के लिए वह अपने पति के वक्ष में छिप जाना चाहती है। पति के विषय में आज तक देखे गये अपने स्वप्नों और कल्पनाओं के समस्त माधुर्य को वह प्रत्यक्ष पा लेना चाहती है। विगत घड़ियों में वह पति की प्रतीक्षा में खोई-खोई-सी रही है और अब जब पति आया ! पति आया !!—उसका वदन काँपने लगा और उसकी सांस जोर-जोर से चलने लगी और वह पसीना-पसीना हो गई !

पहले हृदय में एक नुकीली और तेज़ कोई चीज़ उठी, जो धीरे-धीरे चुभने लगी, फिर वह बढ़कर गले तक आई और वहीं रुक गई, फिर आंखों में जलन जली और सिसकियाँ फिसलने लगीं। आँसू झर-झर झरने लगे। दिनों से रोका गया प्रवाह अब और न रुक सका। बिस्तर तक गई और तकिए में मुँह छिपा कर बिलखती रही—"माँ· · ·मेरी माँ· · ·तूने मुझे सुखी होने की आशीष दी थी· · ·माँ !"

धीरे-धीरे आंसू थम गये और हिचकियाँ रुक गईं। आँचल उसका भीग गया था और छाती पर ब्लाउज़ का उठा हुआ भाग गीला हो गया था। उसने सोचा, कितना बजा है इस समय ? पर, उसकी अनुमान-शक्ति ने साथ न दिया और वह इतना ही जान सकी कि वह बड़ी देर तक रोती रही है, शायद बरसों से, शायद युगों से !

फिर खिड़की से बाहर बड़ी दूर तक फैले अन्ध तमस में उसकी नज़र गई। उसकी जलती आँखें अन्धकार के पार देखना चाहती थीं—

चाँद उग आया था। बाहर जामुन के पेड़ की सफेद शाखा अन्धेरे की कालिमा में एक पतली लकीर-सी दिख रही थी। उस पर तीन-चार पंछी बैठे थे। उनमें से एक नर और शेष मादा थीं। शांति ने देखा···!

शांति ने देखा—नर अपनी मादा का साथ छोड़कर, दूसरी के पास बैठ गया है और जब पहली मादा उसके पास आई, तो वह उसके नरम-कोमल पंखों पर चोंच का वार करने लगा, यहाँ तक कि मादा को उसकी राह से हट जाना पड़ा। फिर नर ने दूसरी पंछिनी को छोड़ दिया और उसे अपने समीप से उड़ाकर, तीसरी से सटकर बैठ गया! अब दोनों पंछी अपनी रस-लीला में लीन हो गये। शांति के कलेजे में एक ठंडी धुक्धुकी छा गई। क्या उसका पति···उसका पति भी इसी प्रकार किसी दूसरी संगिनी के···छिः छिः, पति पर अविश्वास—ऐसा पापी मन लेकर शांति तू कहाँ रहेगी?

फिर उसे बिदा-बेला के माँ के बोल याद आए—"शांति तू इस घर की इकलौती लाड़ली है। दोनों कुलों की लाज रखना। पति चाहे कैसा भी हो, फिर भी वह स्त्री का स्वामी है, देवता है, उसकी आज्ञा मानना नारी का परम धर्म है। यदि दम्पति में मतभेद हो तो, एक को बात मान लेनी चाहिए, या चुप रहना चाहिए। यदि दोनों विरुद्ध दिशाओं में बढ़ते जायेंगे तो बीच का फासला बढ़ता जायगा और दोनों विलग हो जायंगे!···"

"सो मैंने अपनी पति-भक्ति में कोई कसर छोड़ी है?"—उसने धीमे शब्दों में जैसे स्वयं से पूछा।

"भाभी, नारी-जीवन में केवल सेवा से कुछ नहीं होता।

नारी को यदि राधा का हृदय मिला है तो वह, दुर्गा भवानी, और शक्ति भी तो है ? त्याग के साथ तेज भी चाहिए। शिव संसार का कल्याणकर्त्ता है, किन्तु बिना शक्ति के शिव भी 'शव' है। इसे याद रखो।"—अन्धेरे में से अचानक अचला की परछाईं निकल आई।

कुर्सियों पर दोनों बैठ गईं और शाँति ने लैम्प की बत्ती बढ़ा दी।

"बहन !" इतना बोल निकलते-निकलते उसकी आँखें छला-छल भर आईं और उसने साड़ी के छोर से मुँह छिपा लिया।

"यह कायरता है, पति-भक्ति नहीं।"

—अचला की वाणी में पर्याप्त कठोरता और कटुता थी—"तुम उठो और अमर भैया के पास जा बैठो। जब पति की राह गलत हो तो पत्नी को चाहिए कि उसे अपने पथ पर चलाए और स्वयं मार्गदर्शिका बने। इतिहास साक्षी है कि जब जब पुरुष पथ भूल गए, तब तब स्त्रियाँ उन्हें सन्मार्ग पर लाई हैं।"

"लेकिन, वे मुझे अपने दीवानखाने में भी आने न देंगे। मैं दो बार दरवाज़े तक जाकर लौट आई। मेरी हिम्मत न हुई कि दरवाजा खटखटाऊँ। बहन, मैं—कितने दिनों से चाहती हूँ कि वे दो बोल ही बोल दें तो, मुझे चैन मिले।"

"अपने दुख का कारण तुम स्वयं हो। भैया को एक सीमा तक ही दोष दिया जा सकता है। वह जिस वर्ग और कुल में पैदा हुए हैं, उसकी रीतियाँ और परम्पराएँ सड़ी गली हैं। ऐसे वंश के व्यक्ति से यदि तुम कुछ अपेक्षा रखती हो तो तुम्हारी भूल है।—मैंने इसलिए इन ठाकुरों और जागीरदारों

के कुँवर साहबों के विवाह-प्रस्ताव ठुकरा दिए हैं।....मैं इन्हें अच्छी तरह जानती हूँ। ये मात्र स्त्री के भोक्ता हैं। उसके भक्त नहीं। इनके रक्त में सफेदी आ गई है।.... भाभी, उठो और भैया से अपना अधिकार मांगो। पत्नी की जगह पति के पार्श्व में है। यदि पति उसे देने से इन्कार करे तो, समझ लो, पत्नी के विद्रोह के सम्मुख वह शांति से नहीं रह पाएगा। यदि अमरसिंह दरवाजा नहीं खोलता तो, दरवाजा तोड़ दिया जायगा। भाभी उठो, तुम राजपूत क्षत्रिय की बेटी हो। क्षत्राणी धर्म और कर्त्तव्य की मूर्त्ति है। उठो! यदि लोग धर्म का पालन कर उसे दृढ़—बलवान् न बनाएँगे, तो वह निर्बल होगा और अधर्म की जीत हो जाएगी।"

"तुम दरवाजा तोड़ने की कहती हो, उस बहू को, घर में जिसके पैरों की आहट या खांसी भी सुनाई देना मर्यादा के विपरीत है।"

"ऐसी मर्यादाएं स्वार्थियों-द्वारा निर्मित हैं, उन्हें भंग करना ही, उनका पोषण है, सच्चा धर्म है।"

"उन्होंने मुझे कभी अपने कमरे में नहीं आने दिया।"—कहते शांति लजा गई—"जब उन्हें क्रोध आता है, तो वे अगिया-बैताल बन जाते हैं। इन सारे राठौरों का स्वभाव जाने कैसा है?"

शांति से अमर के दूर-दूर रहने और उसे अपने नियरे न आने देने के कारण का अनुमान समझते अचला को देर न लगी!—"दूसरों को दुःख पहुँचा कर प्रसन्न होनेवाले उत्पीड़क हैं ये। बूआ ने तुम्हारे इस घर को बरबाद कर दिया है। उन्होंने भैया को गलत राहों पर चलाया है। उनके शून्य

नारी-जीवन और अधवापन ने उन्हें स्त्री-मात्र के सुख के प्रति घृणा से भर दिया है, फलतः वे पर-पीड़ा में रस लेती हैं। मामा साहब की तुम्हारे प्रति सहानुभूति है, परन्तु अमर इकलौता होने के कारण, वे भी पिता के निर्बल-हृदय से पीड़ित हैं। · · · तुम्हें एक साथ इन सबके विरुद्ध उठना होगा। · · · धैर्य रखो, भाभी तुम जल की बूंद हो तो, चिनगारी भी हो। अपने अस्तित्व के दोनों पहलू पहचानो। मरण वरण के योग्य नहीं परन्तु, यदि जीवन इतना दयनीय हो जाय कि उसकी गति दूसरों की कृपा-कोर की आश्रिता बन जाए, तो संघर्ष-पूर्ण मृत्यु ही अधिक श्रेयस्कर है · · ·।"

"भांजी कुँवर तू इस घर की होली बनकर आई है! सबको लड़वा कर जाएगी, तब चैन पड़ेगा। नारायण तेरा नाश करे, मेरे बैरी।"

"मौसी होकम, तुम संसार में अकेली हो। दो घड़ी राम का नाम जपो तो जपो! काहे को माया के इस कीचड़ में पड़ी हो? अपना इहलोक तो बिगड़ा, अब जानबूझ कर परलोक क्यों बिगाड़ रही हो?—तुम्हारा नारायण सब देख रहा है उसके पास, वह तुम्हें कभी क्षमा न करेगा। अपने घर आई पराई बेटी को दुख देने से बढ़ कर दूसरा पाप नहीं, और तुम अपनी आत्मा से पूछो, क्या तुमने इस प्रपंच में भाग नहीं लिया है? · · · मैं तो कुछ दिनों में चली जाऊँगी, पर मौसी, तुम दुख पाओगी। मैंने सच, कटु सत्य, कह दिया है यह सोचकर कि दूसरा तुम्हें यह सब कह न सकेगा।"

मौसी औचक ही भौंचक बैठी रही!

शांति मन ही मन खुश थी। उसे विस्मय था कि बूआ

बा से जो कुछ वह कहना चाहती थी, वही अचला ने कैसे कह दिया। अचला उसके मन की गति को जानती है। उसने दिन देखे हैं, दुनिया देखी है। और भले, शादी न की हो पर बरात देखी है। वह पुरुषों में रही है। पुरुष-हृदय के रहस्य को जानती है।

फिर अचला शांति का हाथ पकड़ कर बरामदा पार कर गई।

शांति समझ गई कि उसे पति कक्ष में ले जाया जा रहा है। जहाँ वह जाना चाहती थी, लेकिन लोक-लाज और सामाजिक सीमाओं के बन्धन रास्ता रोके रहे। पहले उसके मन में धुक्धुकी हुई। फिर दिल धड़कने लगा। उसके सरोज-मुख पर लालिमा छा गई। बड़ी-बड़ी बरौनियाँ झुक गईं और सांसे बढ़ती गईं ··· बढ़ती गईं !

अमर के कमरे के बाहर लगे दीपक के प्रकाश में अचला ने शांति से नज़रें मिलाईं और मुस्करा दी। शांति की लज्जा और रसभरी दृष्टि देखकर अचला का कुँवरा, अछूता, अन-भीगा मन रस से सराबोर हो गया। ··· उसने अमर का द्वार खटखटाया ! ···

जोर से खटखटाया। भीतर रोशनी जल रही, पर कोई उत्तर न मिला। उसने किवाड़ को पैर की ठोकर और हाथों के जोर से धकेल दिया—द्वार खुल गया।

द्वार खुल गया !

पर कमरा खाली था।



८



रतनगढ़ से लौटते समय अविनाश ने कहा था कि वह अजमेर पहुँच कर कुछ मासिक और दैनिक-पत्र भेज देगा परन्तु दो हफ्ते बीत गए, दो पंक्ति का उसका एक पत्र भी नहीं आया। अचला का मन यों ही शांति-भाभी की वेदना से व्यथित था, अविनाश की लापरवाही से और भी बोझिल हो गया। दोपहरी में, भोजनोपरान्त, जब घर के सब प्राणी ऊँघ रहे हों, तो अकेली अचला वहाँ क्या करेगी? बूआ बा कहा करती हैं कि 'अचला कुँवर, हमारे घर तो भोजन के बाद कुछ देर सो लेने की प्रथा बन गई है। नया मेहमान, जिसे दिन में ऊँघने की आदत न हो, जब गढ़ी में आता है तो दोपहरी में अकेला पड़ जाता है और सबको ऊँघते देख, कुछ दिनों के बाद वह भी ऊँघने लग जाता है।' अचला को मौसी का यह तर्क उचित लगा। होटल में जहाँ विद्यार्थी चाय, सिगरेट या सिनेमा के आदि होते हैं, नवागन्तुक को भी अपनी संक्रामक आदतों द्वारा प्रायः शिकार बना लेते हैं। लेकिन, यहाँ गढ़ी में तो, यह मौसी का तर्क था, इसलिए अचला इसे अपने लिए स्वीकार न कर सकी। दोपहरी की झपकी से दूर रहने के लिए आज उसने सोचा कि गढ़ी और रतनगढ़ गाँव के आसपास के प्रदेश का सर्वे निरीक्षण—वह करेगी। कौन जाने यहाँ भी ब्रिटिश इंडिया की पुलिस या उसके जासूस पहुँच जाएँ और अचला को नए अज्ञातवास की शरण लेनी पड़े!

उसने हजूरी दामा को बुलाकर कन्हैया नामक कबरा

घोड़ा कसने की आज्ञा दी। इस बीच उसने कपड़े बदले। कमर पर पिस्तौल लटकाया और ऊपर से रेशमी चद्दर ओढ़ लिया ताकि उस पर किसी की नज़र न पड़े।

सपाट मैदान में कन्हैया चेतक की चाल चलने लगा। वह शीघ्र ही 'खोयरे' में पहुँच गई। अब मैदान एकदम ढालू दीवार बन गया था और उसकी गोद में खेलती छोटी-सी नदी इस दीवार से गिरता झरना बन गई थी ! गुप्तगंगा का यह वन-प्रदेश बहुत बीहड़ और घना था। शेर, चीते और रीछ के अतिरिक्त, अनेकों प्रकार के जंगली पशु यहां दिन में भी घूमते रहते हैं और झरने के विशाल कुंड पर पानी पीने आते हैं।

कुंड की दाहिनी तरफ नीचे उतरने की संकरी गैल थी, जिस पर अचला ने अपना घोड़ा डाल दिया। वह सधा हुआ जंतु भी सँभल-सँभल कर कदम रखने लगा और उस प्रदेश की भयंकरता की गंध जैसे उसे आ गई हो, उस तरह, अपने कान उठाए आगे बढ़ने लगा। अचला भी इस विचित्र मार्ग को देखकर चौकन्नी हो गई और उसने सोचा कि आखिर किन लोगों ने किस लिए इस पंथ को बनाया है ? पंथी के बिना, पंथ नहीं बनते और कभी-कभी ऐसा होता है कि पंथ होने पर पांथ स्वयं-चला जाता है, जिस प्रकार आज वह खुद आई है।

कुंड के दाएँ और बाएँ ऊँची-पथरीली पहाड़ियों पर जंगली बेर, जामुन, महुआ, पीपल, बरगद और करौंदी के झाड़ और झाड़ियाँ दूर-दूर तक फैली थीं। अचला अपना घोड़ा रोककर भर नज़र इस दृश्य को देखने लगी। नीचे कुंड के तट पर

विशालाकार भीमरूप चट्टानें और प्रस्तर-खंड पड़े थे। चारों ओर गहरी निस्तब्धता पथराई थी, यहाँ तक कि किसी नन्हीं चिड़िया के चहकने की आवाज़ भी नहीं आ रही थी। हाँ, झरने के गिरने का स्वर एक राग में उठ रहा था, जिसमें अजब बेचैनी थी। मानो स्रोत की जलधारा को ऊपर से गिरने के कारण चोट लगी है और वह कराह रही है। लेकिन इस विजन वन में जहाँ विहग-बालाएँ भी सोई हैं, उसकी पुकार कौन सुने? खेतों, मैदानों और गांवों के किनारे-किनारे बहती आती यह जलधारा कितनी उमंगें, विश्वास और स्वप्न लिए थी, किन्तु इसे क्या मालूम था कि स्वयं इसका मार्ग ही पतित होकर, उसे धोखा दे जाएगा और उसे भी पतन के दुर्दिन देखने पड़ेंगे। यही नहीं, भावी मार्ग अवरुद्ध हो जायगा और वह एक कुंड की सीमाओं में बंदिनी बन जाएगी। अचला ने सोचा, धारा जो सदैव इतराती, इठलाती आई है, अपनी इस अवस्था से अवश्य व्यथित होगी, तभी न उसके स्वर में विषाद की यह ध्वनि और करुणा की यह लय है। फिर पल भर में जैसे उसकी विचार-गति अति तीव्र हो गई और उसे लगा कि क्या भाभी की दशा भी इस जल-धारा-सी नहीं है? सुख और सपनों में उनका बालापन बीता है और तरुणाई तो खिलने के पहले ही जैसे मुरझा गई है। अचला की आँखें जो उठीं तो उसने देखा कि उधर झुरमुट में कोई आदमी अभी गया है। उसके मन में कौतुहल जागा और उसने कन्हैया की रास तनिक हिलाई और वह अपनी स्वामिनी का संकेत समझ गया। काँटेदार डालियों से अपना सिर और कंधा बचाती हुई, वह सांस रोके बढ़ने लगी। जब वह इस झुरमुट के पार

हो गई तो उसने देखा कि पगडंडी कई रास्तों में विभक्त हो गई है, जैसे प्रकृति का पुत्र मनुष्य कई मत-मतान्तरों में बंट गया है। सो, अचला यह निर्णय न कर सकी कि वह किस राह जाए ? एक राह यात्री को अपने साथ ले जाती है और अनेक राहें उसे भटकाती हैं।

उसने राह की ओर ग़ौर से देखा तो, नज़र आया कि एक तरफ पंजे के निशान बने हुए हैं। वह उन पदचिह्नों के अनुसरण में चलने लगी। उसे यह देख कर आश्चर्य हुआ कि वह इमली के उस समूह के निकट आ गई है, जो उसकी खिड़की से दिखाई पड़ता है, जहाँ उसने एक रात जलते हुए दीपक की रोशनी देखी थी। अब, उसके मन में शंका हो आई कि यह अवश्य उन डाकुओं का प्रदेश है, जिनके कार-नामे अखबारों में चाव से पढ़े जाते हैं। उसके मन में एक झिझक उठी कि उसे आगे बढ़ना चाहिए या नहीं ? किन्तु उसका एड्वेंचरस स्वभाव इस संकट और भयप्रद स्थान के लिए लुभा रहा था और जीवन में खतरा मोल लेने की उसकी जो आदत बन गई थी, वह उसे बारम्बार प्रेरित कर, आकर्षित कर रही थी। उसने कन्हैया के ऐड़ लगाई, वह इमली-झुरमुट की ओर उड़ चला। तभी उसे यह आभास हुआ कि कोई उसका पीछा कर रहा है। उसने मुड़कर देखा, परन्तु यह उसके अन्तर का भ्रम था, हृदय का वह निर्बल स्पन्दन था, जो संकट के ऐसे अवसरों पर गतिमान हो उठता है। उसने अपनी देह को अच्छी तरह से ढँक लिया और सिर पर हैट इस प्रकार दबाली कि कोई उसके केशों को देखकर, उसका नारी रूप पहचान न सके। पहली इमली से अपना घोड़ा बाँध,

वह खड़ी हो गई और इधर-उधर दृष्टि दौड़ाकर स्थिति का अध्ययन करने लगी।

तभी, कोई दस गज दूर, झाड़ियों में छिपे किसी मनुष्य की आकृति और उसकी पीठ अचला को नज़र आई। हल्की-पीली और भूरी झाड़ियों में गहरे खाकी रंग का कोट दिखाई दिया। एक पेड़ की नीची डाली पर चढ़कर वह बैठ गई और सांस रोके उस आकृति की चर्या देखने लगी। लेकिन उसमें जब हलचल हुई तो वह समझ गई कि यह वही लोग हैं, जिन्हें पकड़ने के लिए पास-पड़ौस के प्रान्तों की पुलिस बरसों से प्रयत्न कर रही हैं। आकृति आगे खिसकती प्रतीत हुई। अचला धीरे से नीचे कूद पड़ी और उसका पीछा करने लगी। कुछ कदम हाथ-पैर और घुटनों के बल चलने पर उसे यह महसूस हुआ कि इस प्रकार पीछा करते हुए छिपे रहना कठिन है। शायद उसके भी पीछे कोई आ रहा हो। और यह ध्यान आते ही उसने पुनः अपने पीछे देखा। वह पल भर में सँभल कर खड़ी हो गयी और अपना पिस्तौल निकाल लिया। दो क्षण और चूक जाती तो उसका पीछा करता व्यक्ति उसके पीछे से आकर कपड़े से उसके मुँह पर पट्टी बांध देता और उसे पकड़ ले जाता।

अचला ने देखा, उसके हाथ में अब भी एक लम्बा-चौड़ा कपड़ा है। दोनों प्रतिद्वन्द्वी एक दूसरे को ताकते रहे। उसके पास नंगी तलवार है, देखकर अचला का साहस बँधा कि अपने पिस्तौल से, उसे तलवार चलाने से पहले ही, गिरा देगी। परन्तु पिस्तौल की आवाज से तो उसके साथी आ जाएँगे? इस विचार के आते ही उसे पिस्तौल की असारता

और ऐसे मौके पर तलवार की शब्दहीन ससारता समझ में आई। अब भी आँखें निकाले वह व्यक्ति अचला को चीन्ह रहा था।

'हाथ ऊपर'. उसने इतना धीमे कहा कि पास के पत्ते भी न सुन लें। उत्तर में अचला ने पिस्तौल उसकी तरफ उठाया और इस प्रकार थामे रही मानो दबाने की देर है।

लेकिन अचला को नहीं मालूम कि चद्दर से हाथ निकालते और इधर उधर करने के उद्योग में, उसके सफ़ेद ब्लाउज़ में छिपा दाहिने ओर का उरोज छलक कर उभर आया था और सामने खड़े वैरी ने उसे देख कर अचला की वय और जाति जान ली थी। अब तो वह सर्वथा निःशंक हो गया, उसने अपनी तलवार म्यान में रखी और आगे बढ़ा।

"तुम्हें सरदार के पास चलना होगा।"

"क्यों?"

"तुम बन्दी हो।"

"और जो न चलूँ।"—अचला ने अपनी आवाज़ को पुरुष-जैसी कठोर भारी बनाने के प्रयास में कहा। उसके प्रयास का रहस्य वेशधारी जानता था। मुस्करा दिया।

"न चलने पर सजा दी जायगी।"

वेशधारी अभी तरुण था। कठिनाई से पच्चीस का होगा। उसका गठा हुआ बदन, सुन्दर चेहरा और चमकीली आँखें आकर्षक थीं। अचला को कुछ अच्छा लगा।

"चलिए वरना मैं सीटी बजा कर अपने साथियों को बुला लूँगा। यह हम लोगों की वह जागीर है, जहाँ प्रवेश करने पर कोई भी जीवित नहीं लौट सकता।"

"तुम मुझे मौत से डराते हो ?"—ब्रिटिश जेल में रहने का अचला का गर्व मुखरित हुआ। उसने गौरव और दर्प से सिर उठाकर उत्तर दिया, और इस अनुक्रम में उसकी चद्दर खिसक कर नीचे आ रही जिसे थामने के प्रयास में वह यह न छिपा सकी कि वह लड़की और युवती है।

"हम लोग डाकू हैं"—युवती को डराने के अभिनय में वेशधारी बोला—'हमारे सरदार का नाम सुना होगा ?'

"सुना होगा, याद नहीं। तुम और तुम्हारे सरदार-जैसे लोग फांसी के तख्ते पर विराजमान होंगे, तभी इस प्रदेश के बीस लाख लोग सुख की नींद सो सकेंगे।"···

दोनों झाड़ी से बाहर आए।

कन्हैया की रास थामे एक व्यक्ति बाहर खड़ा था। वेश-धारी को देखते ही बोला—

"मालिक, यह घोड़ा यहाँ कैसे ?"

"घोड़ा मेरा है" अचला ने कहा।

वेशधारी ने व्यक्ति से कहा कि वह घोड़ा लेकर उनके पीछे-पीछे चले। तीनों जन गुप्तगंगा के कुंड के निकट लौट आए। फिर कई टेढ़े-मेढ़े, सीधे-तिरछे पथ पार कर, वेशधारी आगे बढ़ता गया। उसके साथ अचला वहाँ पहुँची जहाँ पहाड़ों की गोद में एक छोटा-सा मंदिर था। यह स्थान देखकर अचला मुग्ध हो गई !

मंदिर के आँगन में लगभग एक सौ शस्त्रधारी व्यक्ति बैठे थे। उनके बाह्य उपकरण, परिवेश और प्रदर्शन से यह स्पष्ट होता था कि वे सब के सब आयुधजीवी हैं। अपने विरोधी के प्रति जहाँ उनमें अन्तहीन क्रूरता है, वहाँ उनके

चेहरे पर सहज भोलापन है, जो इस बात का साक्षी है कि वे अकारण किसी को नहीं सताएँगे और अन्याय को सहन न करेंगे।

"यह लड़की हमारी जागीर में जासूसी कर रही थी।"

अपने परिचय में 'लड़की' शब्द सुनना, अचला को अब भी अच्छा नहीं लगा। क्या साहस और शौर्य में वह इन सब में से किसी से कम है ? उसने मन ही मन पूछा।

"अच्छा !" तत्क्षण, उपस्थित सदस्यों ने साश्चर्य कहा।

"चद्दर से इसने सारा शरीर छिपा रखा था और इसके पास पिस्तौल भी है।"

"इसे हमारे सामने लाओ।"

अचला ने देखा, मसनद के सहारे बैठा एक बलिष्ठ व्यक्ति कह रहा है।

अचला उसके सामने खड़ी की गई।

"तुम यहाँ क्या कर रही थीं ?"

"सैर।"

"यह सैर की जगह नहीं है।"

"फिर किसलिए है ?"

"यह 'नरसिंहों' की आरामगाह है।"

"नरसिंह क्या साधारण लड़की से डरते हैं ?"

उत्तर न मिला।

सरदार ने हुक्म दिया—"इसे आज रात काली खोह में ससम्मान बन्द कर पहरा लगा दो। कल इसका फैसला होगा।"

"नहीं सरदार, सांप की मौत को टाला नहीं जा सकता।

शायद, इसके साथ और भी गुप्तचर हों। सरकारी अफ़सर इन दिनों हमारे दल का पता पाने को परेशान हैं। इसे शीघ्र फांसी दी जाए।"

"शांति रखिए।"—सरदार ने कहा—"एक औरत और वह भी कल की छोकरी इतने बड़े दल का कुछ नहीं बिगाड़ सकती। कोई भी क़दम उठाने से पूर्व हमें यह सोच लेना चाहिए कि एक औरत को फांसी देना एक नरसिंह के लिए कहाँ तक उचित है।"

"कल तक इसे अपने पहरे में सुरक्षित रखने का दायित्व मैं लेता हूँ।" तरुण ने कहा, जो अचला को गिरफ्तार कर लाया था।

सर्वसम्मति से दल ने निर्णय कल पर छोड़ दिया। तदनन्तर मंदिर में शंख-ध्वनि हुई। शंख बड़े मधुरघोष में बज रहा था। प्रकृति की गोद में बसा यह सुन्दर स्थान, देवालय, झरने की मधुर तान, वीरों का समूह, शंख-ध्वनि और सांझ की आरती की तैयारी—समूचा दृश्य अचला को भा गया। वह अपनी स्थिति और अपना अस्तित्व भूल गई। जब सुध आई तो लगा—काश, ये योद्धा उसके क्रांतिकारी दल में होते तो अब तक देश की स्वतन्त्रता अपने फूल खिला चुकी होती! लेकिन सभ्य समाज से परित्यक्त, क़ानून के अपराधी, परिस्थितियों ने जिन्हें मुजरिम बना दिया है, ऐसे ये लोग अपनी शक्ति और घड़ियाँ व्यर्थ खो रहे हैं!

जब शंख-घोष मन्द हो चला तो, मन्दिर के कपाट खुले और एक दिव्य एवं तेजस्वी मूर्ति प्रकट हुई। उपस्थित भक्त-समुदाय ने अपने शीश झुका लिए, और सरदार ने बढ़कर

दण्डवत प्रणाम किया। इसके बाद शेष समाज ने बारम्बार झुक कर चरण वंदना की।

अचला को भी उनके सम्मुख उपस्थित किया गया। स्त्री को देखते ही स्वामी जी ने आँखें बन्द कर लीं, फिर पूछा—"माँ तुम कौन हो? और इस वियावान बन में कैसे चली आईं।"

"मैं एक साधारण लड़की हूँ महाराज, अपने ननिहाल आई हूँ और सैर के लिए निकली थी कि यह तरुण मुझे पकड़ लाया।"

स्वामी जी उसी प्रकार आँखें मूंदे रहे। मायारूपिणा नारी का दर्शन वे कैसे कर सकते थे? नारी—जिसने अगणित सन्तों, साधकों और सिद्धों को अपनी साधना और सिद्धि से विचलित किया है, उनके दर्शन का पात्र कैसे बन सकती है? स्वामी जी इस बात को जानते हैं कि संसार में ऐसे कितने त्यागी हैं, जिन्होंने स्त्री का त्याग किया हो? राम जैसा पुरुषोत्तम भी स्त्री का मोह न छोड़ सका और उसे अपने साथ वन ले गया, फलतः झगड़े की इस जड़ से अनेक प्रकार के कँटीले कष्ट खिले! यही स्वामी जी की मान्यताएँ हैं।

"गुरुदेव, यह शस्त्र लिए घूमती थी!" तरुण बोला।

"शस्त्र हिंस्र जंतुओं से रक्षा के लिए थे।"

"भगवान एकलिंग तुम्हारी रक्षा करें, माँ! आर्य-ललना को शस्त्रधारी होना चाहिए। आज उसका दुर्गा रूप शान्त हो चला है।"

"स्वामी जी की जय हो!" अचला ने महीन-मधुर शब्द में चाल चली।

"हमारी आरती बेला आ गई है। अधिक चर्चा तुम

से कल होगी," कहकर स्वामी जी लौट गये।

इसके उपरान्त, एक-एक कर सब सिपाही भी बिदा हुए।

काली खोह की काली गुफा में बिछे घास पर अचला ने अपना चद्दर फैला दिया और पैर पसार कर दीवार के सहारे बैठ गई। भीतर धुँधली मोमबत्ती और बाहर गहरी मशालें जल उठीं। तरुण प्रहरी गुफा के द्वार पर रखी पाषाण-चौकी पर बैठ गया।

अब तक चाँद अपनी खिड़की में आ गया था और उसकी एक झलक पाने के लिए अनगिनत तारिकाएँ बाहर आँगन में निकल आयी थीं।



९

दूसरी रात भी द्वार खुला, पर कमरा सूना था !

अपनी नौकरानी के साथ खड़ी शांति उसका मुँह देखती रह गई ! बरबस शांति की नजरें झुक गईं और उसकी प्रलम्ब पलकों वाली नीली अँखियाँ डबडबा आईं।

फिर उसे अचला की याद आई। न जाने क्यों वह इधर नहीं आई आज ? अचला का स्वरूप सामने आया। किस प्रकार उसका खून खौल उठा था। स्वभाव से ही वह विद्रोहिनी है। संघर्ष और लड़ना जैसे उसका दैनिक जीवन बन गया है ! क्या वह अचला के पदचिह्नों पर नहीं चल सकती ?

——सोचते-सोचते शांति की सांस जोर से चलने लगी और हृदय की गति तेज़ हो गई।

'रामा···रा···मा···रामा···' उसने क्रमशः इतने ज़ोर से पुकारा कि छोटी हवेली के नौकर-चाकर, हजूरी-गोले जमा हो गए और हाथ बाँधे हुक्म की प्रतीक्षा करने लगे।

"वे कहाँ हैं ?" उसने डपटकर सबसे समवेत स्वर में पूछा।

सब खड़े-खड़े उसका मुँह जोहते रहे, पर कोई कुछ न बोला। इतने में लड़खड़ाता रामा भी आ गया। उसने हाल ही में कलालिन को अपनी औरत के कड़े-छड़े सौंपकर, अद्धा चढ़ाया था। काँपता हुआ सामने आया। मालकिन का विफरा हुआ रूप देखा तो सारा नशा काफूर हो गया !

"अमर कहाँ है ?"

"अन्नदाता !"

"कहाँ था ? मालूम है इस समय कितना बजा है ?"

"साढ़े ढाई अन्न···"

"हंटर लाओ"—शांति फिर से चिल्लाई। उसकी अलकों बिखरी थीं, जिन्होंने इस हलचल में उसके शशि-मुख पर घूंघट डाल दिया था !

फिर शांति के हाथों रामा की पीठ पर हंटर पड़ने लगे—"मेरे पति को कहाँ ले जाता है ? बता···बता···" हंटर की सड़ाक्-सड़ाक् और चूड़ियों की खन्-खन्। सिर झुकाए दास-दासी और उदास जलते दीपक।

बहू के सुकोमल हाथों में ताकत ही कितनी होती है ? और वह भी सुसराल में ? बूआ बा पीठ पर हाथ धरे, कराहती हुई आईं और उन्होंने पीछे से शांति का हाथ थाम लिया—"यह क्या गज़ब करती हो कुँवरानी ! आज तक तुम्हारी परछाईं भी सूरज-चंदा ने नहीं देखी ! आज तक तुम्हारी सांस हवाएँ भी न सुन सकीं !···छोटी कुँवर ने ठीक कहा था—मैंने इहलोक भी बिगाड़ा, परलोक क्यों बिगाड़ रही हूँ ? नारायण···तेरा नाश करें मेरे बैरी···परलोक क्यों बिगाड़ूँ···हाय···हाय ! इधर आओ बहू।"

बूआ बा शान्ति को भीतर ले गईं। एक-एक करके हज़ूरी नीचे खिसक गए।

"इस घर की तो यही रीत है। अमर ही क्या, समर और हमारे भाभा-साहब भी···कैसे कहूँ—कहते ज़ुबान जलती है··· रातों घर छोड़ कर बाहर रहते। बहू, स्त्री का धर्म तो यही है कि पति की सेवा में निरत रहे। यह देखने में उसका मंगल नहीं कि पति कहाँ गया, कहाँ नहीं···?"

"किन्तु यदि पति-देवता कुमार्ग पर फिसल रहे हों तो क्या पत्नी का धर्म नहीं कि उन्हें सुमार्ग पर लाए ?"—

बूआ बा ने देखा, शान्ति की आँखें क्रोध में लाल हो आई थीं और उसकी सुघर पतली नाक और कपोलों पर अरुणिमा खिल आई थी। अपनी शांत अवस्था से अधिक अशांत दशा में वह सुन्दर लग रही थी। सिसौदियों की यह बेटी··· ! बूआ बा के बरसों से दबे-झुलसे हृदय-कोण में छिपी करुणा अंकुरित हुई।

फिर भी, भावी कलह की रूप-रेखा से वे इस प्रकार आशंकित थीं कि शांति को संतोष दिलाना चाहती थीं। सो बोली—"बहू, तुम समझदार हो। मैं चाहे तुम पर नाराज़ कभी भले हुई, पर इतना तो जानती हूँ कि तुम्हारे पिता जी ने कितने लाड़ और प्यार में तुम्हारा पोषण किया है। कैसे ऊँचे विचारों के वे लोग हैं और कितना सुन्दर वातावरण तुम्हें मिला था ! तुम तो किसी बड़ी रियासत की रानी होने के योग्य थीं। यह हमारा अभाग है··" आज सचमुच बूआ की आँखों में आँसू भर आये। इन आँसुओं का महत्व इसलिए अधिक था कि ये शांति के लिए उमड़े थे, उस शांति कुँवरानी के लिए, जिसे 'नारायण तेरा नाश करे !' की आशीष देने वाली बूआ निरन्तर कोसती रही हैं। यह पाषाणी-शिला के अश्रु थे, कमल की कली के लिए।

"मैं मानती हूँ कि मेरे पिता-माता ने जहाँ मेरा विवाह किया, सोच-विचार कर किया है और मेरा संतोष मेरे पतिदेव के सुख-चैन से सम्बद्ध है। मैं उन्हें सदैव सुखी देखना चाहती हूँ। साथ ही यह भी जरूर चाहूँगी कि मैं भी सुखी रहूँ और

ऐसा कार्य न हो जिससे हम दोनों का मानसिक या शारीरिक संताप बढ़े। होकम, आप जानती हैं कि जब से आई हूँ 'वे' रातों बाहर रहे हैं। और दिन में भी मुझसे दूर रहे हैं !"— शांति का गला भर आया और न चाहने पर भी उसके सालस लोचनों में सजल रुलाई झलक आई।

"बहू, इस पाप का कारण मैं हूँ। तुम नहीं जानती पर अमरसिंह के विवाह में अकारण देरी होती गई। तब मैंने सोचा, तरुण युवक है, समय पर सुख-भोग इसे न मिलेंगे तो भटक जाएगा। शरीर की भूख, पेट की भूख से भी भयंकर होती है, जो आदमी के दिल और दिमाग को अपने काले पर्दे से ढंक देती है और वह कोई भी अनाचार करते समय विचार नहीं करता। मेरा उद्देश्य बुरा न था, पर साधन बुरे थे, असामाजिक थे। फलतः अमरसिंह अपनी राह में फिसलता गया।"

"लेकिन, आज इस समय वे कहाँ हैं ?"

"बहू, इस प्रश्न पर मेरा उत्तर गृह-कलह का मूल बनता है। इसलिए मैं कुछ कहना न चाहूँगी।"

"कहें, न कहें। आपकी मर्जी। किन्तु इतना जानती हूँ कि आपकी अपनी गलतियों का प्रायश्चित चुप रह जाने से नहीं होगा। मैल तो काटे ही कटेगा।"

"तो तुम वचन दो किसी से न कहोगी।"

"न कहूँगी जब तक मेरा और उनका हित-साधन होगा।"

बूआ बा पूरब की बड़ी खिड़की के निकट आई। उन्होंने पहले काठ के किवाड़ खोले। फिर जालीवाले किवाड़ हटाए। पर्दा हटाया और दूर पर इंगित करती बोली—"इधर आओ बेटी, वो देखो, हजूरियों, गोलों, ढेड़ों और ढोलियों के घर।

हमारे वर्ग का समस्त मैल, कलंक और पाप उनमें रहने वाले प्राणी धोते और ढोते रहे हैं। इस घर के दिये विष को उन्हीं में रहनेवाली किन्हीं पातुरिनों और डफ़ालिनों ने पीया है। इस वंश के सारे पूर्वजों की वासना का शृंगार इन कुटीरों की कुमारी कन्याओं और नई बहुओं के रक्त से हुआ है।··· मे··· मेरा हाथ थाम ले बहू ··· मैं खड़ी न रह सकूँगी। शायद इसी पाप के प्रतिफल में सामन्तों के परिवार मिटते जा रहे हैं।"

"और मिट कर रहेंगे वे सब, जिन्होंने मनुष्य की देह और आत्मा का मज़ाक उड़ाया है। उसका शोषण किया है।"

फिर तो एक झपट में शांति द्वार से बाहर हो गई। जल्दी से सीढ़ियाँ उतरकर वह जैसे अंधकार में समा गई।

"बहू ··· बहू ··· कुँवरानी, न जाओ ··· लौटो ··· ··· लौटो!"—बूआ बा की क्षीण वाणी को अंधकार पीता गया। पीता गया! और उसके नशे में और गहरा होता गया!

कोई दो सौ कदम चलने पर शांति रुक गई। यह ढोलियों की बाड़ी थी। यही पास में गढ़ी के गोले और हज़ूरी भी रहते थे। शांति के मन में जब यह विचार आया कि आज तक इस गढ़ी में जितनी बहुएँ आईं, उनमें वही पहली है, जो इस प्रकार अपने पति की खोज में बेपर्दा निकल आई है। सो, संस्कार और सीमा में पला हुआ उसका हृदय-पंछी दो पल के लिए सहम उठा, परन्तु ज्यों ही उसे अपने अधिकार और अपने पत्नीत्व के अपमान की स्मृति आई, वह रोष से भर उठी और अंधकार-सी काली-काली उसकी भौहें अधिक बंकिम हो चलीं।

पत्नी अपने पथ-भ्रष्ट पति के सारे अत्याचार सह सकती है, किंतु वह यह सहन न कर सकेगी कि पति उसके रहते दूसरी स्त्री के फंदे में फँस जाए या स्वयं किसी स्त्री को रखले। कम-से-कम, भारतीय पत्नी को यह अधिकार उसकी सेवा और त्याग-भावना की परम्परा से मिला है। वह पति को 'देवता' समझकर ग्रहण करती है, परन्तु देवता के केवल पाषाण होने का जब उसको विश्वास हो जाता है, तो उसका विद्रोह प्रज्ज्वलित हो उठता है। इसके कुछ अपवाद भी हो सकते हैं।

सो शांति के सामने, अपने पति और उसकी किसी अन-देखी रखेल का धुँधला युगल चित्र आया तो उसका रोम-रोम जलने लगा। उसने अश्रुपूर्ण दृष्टि उठाई तो, पाया कि वह 'हजूरी-वास' के द्वार पर खड़ी है।

वास पुराने किस्म का दुमंज़िला मकान था। उसके आँगन में इमली का एक घना-पुराना पेड़ था। छोटी-सी चहार-दीवारी थी। दो-चार फूल-पौधे थे। कुछ खुले कुत्ते और एक दो बँधे बैल थे। एक छोटा-सा टट्टू वहीं ऊँघ रहा था। और इस समय जबकि लोग सो गए थे और चारों ओर रात ने अपना काला जादू फैला दिया था, वास के सिर्फ एक ऊपरी कोठे में मंद रोशनी थी और दूज के चाँद-सी नरम, नाज़ुक और नवेली शांति बहू उसके दरवाज़े खड़ी थी। उसका दिल त्रस्त कबूतर की तरह फड़फड़ा रहा था और मस्तिष्क एक ऐसे संकल्प को ग्रहण करता जा रहा था, जो धरती के ओर छोर तक आग लगा दिया करता है!

अब वह दबे-पांव सीढ़ियाँ चढ़कर ठीक द्वार पर आ गई।

ज़रा-सी असावधानी पर वह किवाड़ से टकरा सकती थी।

बंद कोठे से दारू की हल्की गंध आ रही थी। मंद दीपक का धुँधला प्रकाश दरारों में से बाहर निकल आने की कोशिश कर रहा था। एक नौजवान लड़की की खिलखिल हँसी फूट रही थी।

शांति ने पुरुष के खाँसने की ध्वनि सुनी। वह जान गई कि यह अमर है। लड़की खिलखिलाई और इस बार की उसकी हँसी अधिक मधुर और तर थी। हवा के गहरे झोंके के साथ शराब की रस-भीनी गंध शांति के मस्तिष्क तक पहुँच गई। फिर लडकी बोली—"मैं तो बड़े रावले (समरसिंह) के साथ भी सोई हूँ इसी तरह। कल रात बड़ी गढी में थी।"

"तू शैतान की करामात कहाँ नहीं गई?" शांति के कानों में अमरसिंह का स्वर स्पष्ट था।

शांति ने दरार से झाँककर देखा और जो देखा, उसपर घबराकर दो कदम पीछे हट गई। सांस रुकती और सिर भारी होता था। क्या यही दृश्य देखने को उसकी माँ ने उसे आशीष दी थी। क्या इन्हीं अनुभवों के लिए पिता ने उसे पति-सेवा का उपदेश दिया था? अमर के साथ थी 'भौजाई!' छोटी हवेली की नई हजूरिन! शांति ने दरवाज़े पर जोर की ठोकर दी और किवाड़ खटखटाया।

"कौन है?" भौजाई ने पूछा। उसकी आवाज से मालूम होता था कि वह अब भी लेटी है। और लेटे ही लेटे पूछ रही है।

"कौन होगा?" अमरसिंह ने जरा डपट कर पूछा।

"कभी-कभी हवा के झोंके से भी किवाड़ खड़-खड़ करते

हैं।" हजूरिन बोली।

"हवा से नहीं, आंधी के झोंके से। दरवाज़ा खोलो। वरना मैं इसे तोड़ दूंगी। भौजाई तू बाहर आ जरा।" शांति ने फिर झाँककर देखा।

भौजाई पलंग से उछलकर नीचे आ गयी थी। दीए की बत्ती उसने बढ़ाई और जल्दी में कोई कपड़ा लपेटते हुए धीमे बोली—"होकम, आवाज़ कुँवरानी जैसी लगती है।"

"पगली हुई है। कुँवरानी की हिम्मत जो इस अँधेरी रात में यहाँ तक पहुँच जाये? वह तो छोटे चूहे को देखकर भी काँप उठती है।"

"शेर के शिकारी, बाहर तो निकलो।"

भौजाई स्तब्ध खड़ी रह गई। कुँवर अमरसिंह के लिए अपना पौरुष और पराक्रम दिखलाना अनिवार्य हो उठा—"लाना मेरी बन्दूक़। अभी ठार कर दूंगा।"

भौजाई ने अमरसिंह को रोककर पलंग पर बिठा दिया—"अन्नदाता, लोग तो कल यही कहेंगे कि मालिक भौजाई के घर से रूठकर चले गये। आपके हजूरी (भौजाई का पति रामा) मुझे मार डालेंगे। और आपको कहीं कुछ हो गया तो, मैं कहाँ राज-दरबार में जाती फिरूँगी?" भौजाई उसके पैर पकड़कर बैठ गई।

"अच्छा तो, ला एक प्याला"—अमरसिंह ने नशे में झूमते हुए कहा। दोनों फिर से ढालने लगे। शांति के नयन डबडबा आये। उसका धन, उसका सर्वस्व चुरा लिया गया था।

नख से सिख तक भौजाई का नग्न शृंगार देखकर वह

चकित रह गयी। गोलों में भी इतनी अक्ल होती है—इसकी कल्पना उसने नहीं की थी !

दुःख और ग्लानि से हृदय परिपूर्ण हो चला। उसने अपनी नन्हीं-नन्हीं मुट्ठियों से दरवाजे पर बारम्बार वार किया। उसकी पतली सुनहली चूड़ियाँ खनखना उठीं। भीतर से कोई उत्तर न मिला। कलेजे में कोई नुकीली चीज गड़ी। आँखों में जलन हुई। धड़कन बढ़ी और एक जोर की सिसकी उसके कंठनीड़ से बाहर उड़ चली।

तभी जाने क्या ख्याल आया कि तेजी से वहाँ से चल पड़ी। उसकी रतनारी आँखों से वेगवान जलधारा बह रही थी, जिससे उसे रास्ता नहीं दिखाई दे रहा था। यों भी, वह भावना के भँवर में इस प्रकार बही जा रही थी कि पंथ और अन्त की उसे सुध नहीं थी, चिन्ता नहीं थी, फिक्र नहीं थी। आज तो जैसे वह अपने ही वश में नहीं थी, आज कुल-परिवार, वंश-मर्यादा और ब्याह-बंधन की समस्त सीमाओं को वह पार किये जा रही थी।

रात जितनी काली थी, उतनी ही अँधेरी भी। और अँधेरा जितना गहरा था, शांति की पीर भी उतनी ही घनी और गहरी थी।

वह चली जा रही थी—जानी-अनजानी सभी गैल, पगडंडियाँ और लीक छोड़कर, किसी अनजाने मार्ग, देश और दिशा, की तलाश में। आज तक वह कठोर मर्यादा में रही है, आज वह विपथगामिनी होकर, सारी मर्यादाओं को पैरों की धूल बनाकर, पहाड़ों से गिरकर थपेड़े खाती हुई सरिता की तरह, बहना चाहती है। जीवन जिस वेग का नाम

है, उस वेग की गति को वह साकार पाना चाहती है।

जीवन के प्रवाह की राह को अवरुद्ध रखकर समाज और परिवार ने उसके साथ जो अत्याचार किया है, उसका प्रायश्चित उन्हें करना ही होगा। अपने अन्याय का पश्चाताप वे करें या न करें, शांति तो अब वन्धनों को काट कर, लो, चल पड़ी है !—, रात की विषैली गोद में विलीन राहों को खोजती, खेत, मैदान और खलिहानों से परे, पति नामक जन्तु और परिवार के पशुओं से दूर !

उसके पैर लहू-लुहान हो गये थे और आसपास के झाड़-झंखाड़ों ने उसकी साड़ी को अपने स्पर्श से तार-तार कर दिया था। उसकी घुँघराली लटें उसके सुन्दर मुखड़े पर बिखर आई थीं और उसकी चोली पसीने से भीग कर उसकी कंचन काया से चिपक चली थी, इस डर से कि इधर-उधर के कंटीले पेड़ उसकी चोली की भी वह दशा न कर दें, जो साड़ी की हुई है। अब उसकी रुलाई और सिसकियाँ थम गई थीं और रात भी कुछ ढल कर दुबली हो गई थी। परिणाम में, उसकी गहराई कम हो गई थी। शांति के क़दम जब बोझिल मालूम हुए तो उसने जान लिया कि सामने ऊँची और लम्बी घाटी अड़ी है। अब थकान और पीड़ा के मारे उसके लिए एक पग भी चलना मुश्किल था। आदमी जब अपनी राह खुद चुनने के योग्य हो जाता है तो बीच में पहाड़ और चट्टानें इसी तरह बाधा बनकर खड़े हो जाते हैं। शांति ने फिर भी हिम्मत न हारी और एक क़दम उठाया, लेकिन क़दम क्या सब दिन समान गिरते हैं ? और यह तो क़दम उठाने वाले को पहले से सोच लेना चाहिए कि उसके

पैरों के नीचे की धरती सदैव समतल नहीं होती। सो क़दम जब फिसला तो शांति लुढ़कती गई, गिरती गई!

जहाँ वह गिरी वहाँ दोनों ओर ऊँची-लम्बी और गहरी-काली चट्टानें खड़ी थीं। खड़ी-खड़ी वे बरसों से ऐसे ही किसी राहगीर की प्रतीक्षा में थीं, जो उनकी पथरीली गोद में अपने को फैलाकर इस प्रकार सुबुक-सुबुक कर रोये और अपने आँसुओं के रेशमी सितारों से उनकी गोद का सिंगार करे।

अँधेरे की कृष्णमुख साड़ी ओढ़े विधवा रात साँय-साँय रो रही थी और उसके बिखरे बाल दुनिया भर के दुखियों की भावनाओं को भेद रहे थे।

लेकिन, रात थी कि फिर भी चट्टानों पर पछाड़ें खा रही थी।



गुफा के द्वार पर मशाल अब भी जल रही थी। पथरीली दीवार से पीठ लगाये अचला बैठी अब भी साड़ी का छोर बँट रही थी।

रात जब बढ़ती है, सूनापन छा ही जाता है। यौवन जब आता है, खामोशी आ ही जाती है। रात चाहे जितनी घनी हो योगी, वेश्या, चोर, रखवाले, दीपक और उल्लू तो जागते ही रहते हैं।

"प्रहरी सो गए क्या ?"

"नहीं, प्रहरी सो जायेगा, तो बंदी भाग जायेगा।"

"परन्तु, प्रहरी की पहुँच लम्बी हुई तो बन्दी पुनः पकड़ लिया जायेगा।"

"सच ?"

"सच !"

अचला को कुछ अच्छा, कुछ बुरा लगा। न जाने क्यों इस व्यक्ति के लिए उसके मन में आकर्षण हो आया है। उसका साहस, उसका रूप अचला को लुभा गया है। और उसका स्वभाव अचला को भा गया है। 'फिर तू अब भी चट्टानों पर बैठी आंचल के छोर क्यों ऐंठ रही है ? मन का यह मोड़ अब भी दूर न होगा ?'—यह विचार आते ही अचला के शरबती होठों पर एक हल्की स्मिति लहरा गई और उसके उनींदे नयनों में एक अनचखी मदिरा की खुमारी तिर आई। छोर वह अब भी बंट रही थी। हृदय जब रस से भीग जाता है,

तब यही होता है। अचला को यह बड़ा विचित्र लगा कि वरसों में जो किसी से लौ लगी तो इस निर्जन वनप्रदेश की अँधियाली गुफा में, बन्दिनी की दशा में, एक लुटेरे के साथ। मन की गति पथ को नहीं देखती। समय और स्थान से जैसे उसे सरोकार नहीं।

"प्रहरी, तुम सचमुच लुटेरे हो?"

"तो क्या आप झूठ समझती हैं?"

"झूठ भी नहीं समझती और विश्वास करने को जी नहीं चाहता।"

"लेकिन, मैं तो आपके जी को नहीं समझा सकता।"

अचला को यह रूखापन अच्छा नहीं लगा। क्यों नहीं समझा सकते? मन की बागडोर तो तुम्हारे हाथ में है।

आँचल का छोर इतना ऐंठा जा चुका था कि अब वह स्वयमेव खुल रहा था। और अचला बड़े गौर से उसकी खुलन को देख रही थी।

प्रश्न इस बार प्रहरी ने किया—"इस प्रदेश में खतरा जानते हुए भी, कैसे आयीं?"

"खतरा मोल लेना मेरा स्वभाव बन गया है। बात यह है कि मैंने बयालीस के आन्दोलन में कुछ भाग लिया था और अपने साथियों के साथ पकड़ी गयी थी।....."

"जो पकड़ा जाता है, वह लड़ना नहीं जानता।"

"चुप रहो, मुझे बात पूरी करने दो। तो, मौक़ा पाकर मैं और एक-दो साथी जेल से भाग निकले। लेकिन, यह सोच-कर कि क़ानून की पूंछ लम्बी होती है, मैं मामा के यहाँ रतनगढ़ चली आयी।"

"रतनगढ़ में आपके मामा कौन होते हैं ?"

"बड़े भोले हो। प्रहरियों का इतना भोला होना ठीक नहीं। ऐसे ही पहरुए पाकर तो बंदी भाग जाते हैं। ठाकुर समरसिंह मेरे मामा साहब हैं।"

"क्या कहती हैं ?"—प्रहरी तन कर खड़ा हो गया।

"अचला ठीक कहती है"—पीछे से आवाज़ आयी।

प्रहरी ने चौंक कर अपने सरदार ठाकुर समरसिंह को देखा और सैनिक-अभिवादन किया। उसके अभिवादन का उत्तर उसी प्रकार देते हुए समरसिंह ने प्रहरी के साथ गुफा में प्रवेश किया—"कुँवर, कैसी हो ? मामा की जेल से तो तुम नहीं भाग सकीं ?"

"सुबह तक रही तो भाग जाऊँगी।"

"सुनते हो अनुराग ?"

प्रहरी अनुरागसिंह मुस्करा भर दिया। अचला ने इस मुस्कान को देखा और पल भर में, मन ही मन इसकी तुलना अविनाश की मुस्कराहट से की। कितना अन्तर! एक हेमन्त-निशा की शिशिरबिन्दु, दूसरी समुद्री जल की वाष्पबिन्दु!

ठाकुर समरसिंह ने अचला के कंधे पर हाथ रखते हुए कहा—"भोजन कर लो।"

"इतनी रात गये, मैं तो कुछ न खाऊँगी।"

"भूखी रहेंगी?"—अपरिचित का प्रश्न आया।—एक मनुहार और विस्मय का रस उसमें था। और अविनाश होता तो इतना भी नहीं पूछता। काँग्रेसी सभी ऐसे हैं। किसी काँग्रेसी ने, क्या कभी किसी से भूख और खाने के लिए पूछा है ? आँचल का छोर पूरी तरह खुल गया था, और अब उसमें

कुछ सिलवटें ही शेष रही थीं। अविनाश दूर हो गया था। अनुराग पास आ गया था: फिर भी, इन दोनों पुरुषों के बीच, अचला अचल चट्टान की तरह थी।

जब तीनों व्यक्ति भोजन कर रहे थे, अचला ने कहा,—"जी, मामा! अब मैं जान गयी कि सरकार आपके पीछे क्यों पड़ी है? और रतनगढ़ ठाकुर के सिर के लिए इनाम क्यों निकले हैं? लेकिन· · ·"

"लेकिन, कहना चाहती हो कि हमारा यह काम तुम्हें बुरा लगता है।"

"काम कोई बुरा नहीं होता, बुरा तो मनुष्य है,—उसका कर्त्ता, जो अपनी बुराई अपने कर्म को पिला देता है।"

अचला की बात तरुण प्रहरी को अच्छी लगी।

"मामा सा" मैं भी आपके दल में आना चाहती हूँ।"

"ऐसा नहीं हो सकता।"

"मेरी बात भी सुनिए, शक्ति 'शिव' के साथ ही शोभा देती है। अशिव और असुन्दर शक्ति के सेवक नहीं हो सकते· · ·"

"अपनी बात कहो।" अनुराग ने कहा।

"इतनी उतावली अच्छी नहीं। तो, मैं यह चाहती हूँ कि आपके दल की यह सशक्त और संगठित ताकत देश के किसी उपयोगी क्षेत्र में लगायी जाय। जो कुछ गुजरा, उस पर सोच-विचार या बहस करना हमारी परम्परा नहीं। विचार का अनुक्रम कर्म से पहले है। कर्म के उपरान्त भावी का संयोजन होना चाहिये और कर्म जब गतिशील हो, तब तर्क और विचार को उसके मार्ग में बाधक रूप में उपस्थित होने

का मौक़ा नहीं देना चाहिए। जो बात करता है, वह काम नहीं कर सकता। जो कर्मरत है, वह मौन है। ख़ैर, कैसा हो, यदि आपका दल सशस्त्र क्रान्तिकारी पार्टी में बदल जाए? आपको अपने किए खून और बदले के प्रायश्चित का अवसर मिल जाएगा और देश के नौजवानों के सामने भगतसिंह की तस्वीर जिन्दा हो जाएगी।"

और अचला ने तिर्यक्-दृष्टि द्वारा यह जान लेना चाहा कि अनुरागसिंह पर उसके प्रस्ताव की क्या प्रतिक्रिया हुई है, किन्तु अनुराग, इसके पहले कि कुछ कहे, अपने सरदार का मुँह जोह रहा था।

"मैं इस प्रस्ताव को कल दल और स्वामी जी के सम्मुख रखूंगा।"—समरसिंह ने कहा।

चेहरा दर्पण की तरह है, बड़ा संवेदनशील है और उस पर भावनाओं के उतार-चढ़ाव की परछाइयाँ शीघ्र झलकती हैं। तरुण प्रहरी के अन्तर में द्वंद्व है। आँचल का छोर भली भांति खुल गया है। समय उसकी सिलवटों को मिटा देगा। तरुण जैसे कोई स्वप्न देख रहा है। अचला ने देखा।

"हो-हो-होकम, बिछौने तैयार हैं।"

अचला ने ध्यान से सुना और देखा, हजूरी ने 'तैं' पर सिर को झटका दिया और उसके मुँह से 'यार' फूल की तरह झर गया। अब अचला को स्वप्न भंग पर विश्वास हुआ कि यह तो दामा हजूरी है। वह ज़ोर से खिलखिला कर हँस दी। उसकी हँसी का कारण जान दामा लँगड़ाता हुआ लौट चला और मामा हँसी में योग देने लगे।

विजन वन प्रान्त में, डाकुओं की संगति में, धुँधले चाँद

की जोत में लेटी अचला को एहसास हुआ कि सचमुच वह कहाँ है ! वह चट्टानों पर लेटी है और उसके पिता होंगे इस समय लंदन के अपने होटल में और उनके साथ· · ·छिः,—इस मन को क्या हो गया !



चट्टानों की पथरीली गैल पर गिरी शांति को सुध नहीं थी। फिर उसे यह ध्यान कैसे आता कि वह बड़ी देर वहाँ पड़ी रही है।

स्वप्न, सुषुप्ति, मूर्च्छना और मृत्यु की दशा में प्राण भी क्या सो जाते हैं? अथवा प्राण और आत्मा सदैव जागते हैं, सो जाते हैं, तो उन्हें चेतन क्यों कहते हैं? जो सो जाता है, वह तो बहुत कुछ खो देता है। प्रकृति जब निरन्तर जागती है तो पुरुष कैसे सो सकता है? पुरुष जब सोया रहता है, चाँद तब भी उगता है और झरने तब भी गाते रहते हैं। हवाएँ तब भी चलती हैं और ओस तब भी झिरमिर-झिरमिर मौन बरस जाती है! आश्चर्य है, इतना वैभव लुटता है और आदमी सोया रहता है! मझरात में दूर से आती किसी विदग्धा पंछिनी की आहत पुकार क्या व्यक्ति को बेचैन नहीं बनाती? शशि जब अपलक आँखों से तारिकाओं की रसवंती जोत पीता रहता है, तब कोई तनिक सेज छोड़कर बाहर तो आये! स्वर्ग भी क्या ऐसा ही होगा? हुआ, तो भी, देवों ने धरती के इस सौंदर्य की नकल ही की होगी!

दिन भर की ऊष्मा और जलन के बाद धरती ठंठी पड़ती जा रही थी। तपन से उसका चेहरा सांवला पड़ गया था और उसके अंग-अंग में तड़कन थी। इसी गर्मी के भय से नाजुक हवाएँ दिन भर इधर-उधर छिपी रहीं और अब, जब देखा कि धरती इतनी ठंडी हो गई है कि पैर धरने पर कुछ

न होगा, तो वे बाहर निकल आईं। दिवस भर वे झपकियाँ लेती रहीं और निद्रा से अब आलस छोड़कर उठीं तो, सिंगार प्रसाधन में लग गयीं। उन्होंने अपनी गोरी बाँहों पर बकुल के गजरे बाँधे। पैरों में तारक-घुँघरू पहने। सघन मेघों-सी श्यामल अलकों में लाल कनेर गूंथे। भाल पर अरुण इंगुर की नूतन जोत वाली बेंदी लगाई। वे कनकवया थीं। उनके गात केसरिया थे। लाल प्रवाल-से अधरों पर चमेली-सी मधु मुस्कान थी। उनकी पगतलियाँ और पद मेंहदी-मंडित थे; और ज्यों-ज्यों वे सज रहीं थी, मन का उछाह हिल्लोलित हो रहा था और लाजवंती की परछाइयों की तरह हलके स्वर उनके रसीले कंठ से उठने लगे थे।

उनके गुलाबी और हरित दुकूल हौले लहरा रहे थे। आंज उनके द्वार कपूरी दीपों का त्योहार आया था और आँगन में उन्होंने जूही के कुँवारे फूलों को झरते देखा था, इससे उनके मन में एक व्याकुल व्यथा जग आई थी। और अब घनीभूत विरह का शमन करने, रूप सजाए और वेश बनाए वे माधव के देश जा रही थीं। वे जल्दी में थीं, परन्तु, तरल-अंगुरिया यौवन-भार के कारण पैर भूमि पर नहीं टिकते थे। और मिलन-पुकार थी कि बढ़ी आ रही थी।

और यों सिंगार पूरा करके कंकन में कील देने जा रही थीं और कटि-करधनी की कड़ी जोड़ रही थीं कि किरन-किन्नरियाँ स्वप्नलोक के पिया की मनुहार लेकर आ पहुँचीं। 'कहो, आती हैं,' कहने में संकोच होता था और न कुछ कहने में 'उनके' रूठ जाने का अन्देशा था, अतः बोली, 'रुको, साथ चलती हैं।' और यों मन की लाज मन में ही रही।

जब धरती यों अलसाई और हवाएँ यों सजीं, तब गगन की नीली डाली पर चाँद गेंदा के पीले फूल-ज्यों खिल आया। और उसकी छाया में चाँदनी हरसिंगार की उजली हँसी-सी लगी। · · · ऐसे में बेसुध होकर शांति स्वर्ग-सुख-सौरभ से वंचित न रह गई ?

शांति के घुटने में चोट आई थी। एक हाथ की कोहिनी रगड़ से जरा छिल गई थी। ठंडी हवाओं ने उसे चेतना दी। उसकी आँखें खुलीं और देखा उसने स्वच्छ-नीला आकाश ! अपने नीचे की धरती उसे कठोर लगी और प्रश्न उठा 'मैं कहाँ हूँ ?' तनिक मुँह फिरा कर जो देखा—दो चट्टानों के बीच तिर्यक-मुख चाँद मुस्करा रहा था। शांति को इस अगम अवस्था में भी लगा जैसे, यह चाँद उसका कोई युग-युग का नेही प्रियतम है, उससे दूर, बहुत दूर,। उसे बुला रहा है क्या ?· · ·

फिर उसे याद आया बूआ बा का संवाद। फिर उसे याद आया हजूरी-वास उसका जाना और याद आए मंद दीपक, दारु की अलबेली गंध, भौजाई · · · भौजाई की मदभरी चिहुक और तड़पन ! उसने द्वार की दरार से झाँक कर देखा था, अमर, भौजाई · · · !

वह उठ कर खड़ी हुई। सिर चकरा रहा था। आगे कुछ याद नहीं आ रहा था ! वह गाँव से इस बेगाँव वीराने में कैसे आ गई ? चट्टान के चरणों में सफेद आकृति का साया उसे चलता हुआ प्रतीत हुआ, वह घबरा गई—'डाकिन' वह कह न सकी, और फिर गिर पड़ी और फिर बेहोश हो गई।

वह आकृति, जिसे डायन समझ शांति डर के मारे बेहोश

हो गई थी, निकट आई। उसने झुक कर, शांति को छू कर देखा। जब उसे मालूम हुआ कि यह कोई स्त्री है तो एक क़दम वह पीछे हट गई।

सुनसान वनान्तर। उत्तुंग चट्टानें। पथरीली गैल। चाँदनी रात। एकान्त स्थल और एकाकिनी स्त्री!

उसने और झुक कर स्त्री का चेहरा पढ़ लेना चाहा। वह यहाँ तक झुकी कि उसकी सांस शांति की सांस में मिल गई। अथवा, इस अचेतन अवस्था में शांति को अपनी सांस का उत्तर मिला है एक दूसरी सांस से, जो विकट एवं कठिन स्थिति में इस प्रकार उसके पास आ सकती है!

उसने शांति को अपने हाथों में उठा लिया। उठाते समय, उसने इस तैयारी से हाथ लगाए थे, मानों वह एक भारी चीज उठाने जा रही है, लेकिन जब यह स्त्री उसे फूल-सी हल्की लगी तो विस्मय हुआ, इतनी सुन्दर चीज़ और इस प्रकार हल्की! उसके ख्याल से सभी सुन्दर पदार्थ भारी होने चाहिए। उसने सोचा, तब तो यह चाँद भी इतना ही हल्का होगा और ये चट्टानें भी इतनी ही बेवज़न होंगी, मगर, ऐसा कैसे हो सकता है? चाँद, चट्टानें, पानी और स्त्री सब में वजन है, अपने-अपने आकार-प्रकार और आयतन के अनुरूप! पानी में यदि वज़न ही होता तो मछलियाँ और अन्य जल-जन्तु मर गये होते। लेकिन वे तो तैरते हैं। सीप तो नहीं तैरती? वह टूट गई होती। तो क्या ये चट्टानें भी भीतर से खोखली हैं! तोड़ कर देखने पर तो कभी खाली-खोखली न लगीं। फिर तो इनमें बहुत वज़न होगा……

छाया-आकृति अपने परिचित मार्ग पर बढ़ती जा रही

थी। आँखों से उसे अपने पैरों तले की धरती देखने की जरूरत नहीं पड़ती थी। पथ स्वयं उसके पैरों को ले जा रहा था, जैसे वह उनके स्पर्श को जानता है और पैर भी पथ-धूलि का स्पर्श पहचानते प्रतीत हुए।···चट्टानों के वज़न से, पहाड़ों के बोझ से धरती धँसकती नहीं? उसे पीड़ा होती होगी? कितना भार वह वहन करती है, कोई नहीं देखता !···और चाँद में वज़न है तो वह धरती पर गिर क्यों नहीं जाता? कोई कड़ी है जो उसे आकाश से जोड़े हुए है उसने अपने हाथों की गिरफ्त ढीली कर यह देखना चाहा कि यदि वह इस स्त्री को निरवलम्ब छोड़ दे तो यह गिरती है या नहीं? लेकिन जब स्त्री फिसलने लगी तो वह सँभल गयी कि कहीं यह कँकर या पत्थरों में न गिर जाए ! उसके सुन्दर तन-बदन पर धूल न लग जाए। उसे यह अनुभव प्रिय लगा कि चाहे चाँद हो या चट्टानें—कोई बेसहारा नहीं है। निरवलम्ब कोई टिक नहीं सकता !

चाँदनी की झिलमिल परछाइयों में उसे लग रहा था यह स्त्री कुँवारी है। उसे यह समझ में नहीं आ रहा था कि ऐसे समय यह कहाँ से यहाँ आ फँसी? आकाश से टूट कर गिरी कोई तारिका तो नहीं है यह? उसने फिर स्त्री के मुख पर दृष्टि डाली। कैसा लावण्य, कितना माधुर्य, कहाँ का सौन्दर्य ! छाया जितनी चंचल, उतना चंचल उसका मन। लगा कि इस मोहिनी के इन अछूते अधरों का एक नन्हा-सा चुम्बन ले। उसने ग्रीवा तनिक झुकाई पर आगे झुक न सकी और हाथ ऊपर उठ न सके। फिर मन ने अपना मार्ग बदला और पूछा —"क्या एक सुन्दरी को सूने में चूमने के लिए भी चोरी

करनी होगी ?"

उसका गंतव्य निकट आ गया था। जलती धूनी का जग-मग प्रकाश उसे दिखाई दिया और उसने जैसे इस बोझ और बला से छुटकारा पाने के लिए, जैसे उसे अपने पर ही विश्वास न हो, आवाज दी—"स्वामी जी !"

दो पल विराम के पश्चात् उत्तर आया—"जय एकलिंग !"

"स्वामी जी"—फिर से इसने पुकारा, मानो स्वामीजी के लिए विशेष संदेश है।

"क्या है जवान ! तुम लौट क्यों आए ?"

"जय एकलिंग ! रास्ते में यह औरत······लड़की बेसुध पड़ी थी।"

"क्या कहते हो ?" स्वामी जी ने धूनी की एक लकड़ी मशाल की तरह ऊँची उठा कर कहा।

"देख ही लीजिए"—जवान ने स्वामी जी के चरणों में शांति को लिटाते हुए कहा।

पैरों में जैसे कोई नागिन आ पड़ी हो, उस प्रकार, स्वामी जी "शिव-शिव' कहते दो पग पीछे हट गए। उन्होंने अपनी आँखें मूंद लीं।

जवान विमूढ़ बना खड़ा रह गया। उसे अपने श्रद्धेय गुरु-देव का यह व्यवहार पसन्द न आया। चाँद से दूर रहने के लिए कोई कब तक आँखें मूंदे रह सकता है ? सरासर यह जवान का अपमान है, क्या इतना भार उसने व्यर्थ ही ढोया ? भार—इसमें भार कहाँ से आ गया, यह तो इतनी हल्की लग रही थी ! जिसमें मन है वह फूल लगता है, हल्का है। जिसके

प्रति मन बेमन है, वही शूल लगता है, बोझिल है।

"कोई राह बताइए महाराज, यह कब तक यूं पड़ी रहेगी ?"

"इसे कुटिया के कोने में लिटा आओ। हम वन में चले जाएँगे। तुम संदेश देकर तुरन्त लौटो।" स्वामी जी की आँखें अब भी बंद थीं।

"शायद, मुझे देर भी हो जाए। भौजाई घर में अकेली होगी, और लौटते वक्त इसके लिये कुछ फल-फूल लेता आऊँगा।"

"जय एकलिंग।" स्वामी जी ने आकाश की तरफ अपना चिमटा थोड़ा उठाया और मानो स्वीकृति में उद्‌घोषणा की।

जवान शांति को कुटिया के कोने में लिटा आया। स्वामी जी के चरण छुए और चल पड़ा। चाँद से दूर, चट्टानों की ओर! जाने क्यों उसके पैर आगे और मन पीछे जा रहा था। उसे याद नहीं आ रहा था कि इस छोकरी को पहले कहाँ देखा है? 'इसे कहाँ देखा—' इस प्रश्न की माला फेरता, अपनी धुन में वह अपनी राह काटता जा रहा था!

कुटिया न छोटी, न बड़ी थी, साधारण घास-फूस और बांस-मिट्टी से बनी थी। जैसी कुटिया होनी चाहिए, वैसी थी। एक छोटा-सा दरवाजा और तीन छोटी-छोटी खिड़कियाँ थीं।

इस समय रात की सन्नाहट अपने उठाव पर थी। सूनेपन में भी एक अश्रव्य, प्रच्छन्न कोलाहल होता है, तभी न आदमी उससे ऊब जाता है। एक गहराई होती है, तभी न आदमी उसमें डूब जाता है! आसमान का धुँधला शशि, जो सदैव राज प्रसादों के वातायन में झांकता है, आज साधु की कुटिया में झाँक रहा था। पूरब की खिड़की में उसका सुगोल प्रति-

बिम्ब पूरा-पूरा झलक रहा था । उसकी आभा, भूमि पर चित्त पड़ी शांति की परछाईं दीवार पर अंकित कर रही थी ।

शांति का एक हाथ फैला था और दूसरा उसके सिरहाने था । इससे उसके सरोज उरोज उभर आये थे और शशि चितेरा था कि दीवार पर चित्र पूरा पूरा बना रहा था । पैरों पर साड़ी पिंडलियों से ऊपर खिसक आई थी और एक ढीला पायल ऊँचा चढ़कर चाँदनी में चमक रहा था और उसकी रुपहरी आभा हल्की-नीली लगती थी । शांति की सांस धीमी चल रही थी फिर भी छाती के उठने गिरने की क्रिया दीवार पर बराबर आ-जा रही थी । चित्र में गति नहीं होती पर चंदा के बनाए इस चित्र में गति और क्रिया दोनों ही थीं । चित्र पूर्ण था, फिर भी चाँद उसे अपलक नज़रों देख रहा था, जैसे वह कहीं त्रुटि पा लेना चाहता है । शांति के नाक की कील तनिक खिसक गई थी और उसका नीलम नगीना उसके ऊपरी ओंठ पर हलकी छांई डाल रहा था । दूज का चाँद भी उतना नुकीला और सलौना नहीं, जितना था शांति के चेहरे का नक्श ! जिसने चाँद को अपनी लगन में इतना मगन और मजबूर कर दिया था कि वह गगन से उतर, नीचे मृत्युलोक में साधु की एक कुटिया का छवि-वैभव देखने के लिए खिड़की में आ खड़ा हुआ था ! यह छलिया और चित्र-चितेरा चाँद ! हर रोज बदलने वाला चाँद !

'पानी, पा···नीऽ' धुँधली-धुँधली एक ध्वनि कुटिया से आई । आँखें बंद किए साधु एक स्त्री को पानी नहीं पिला सकता है—स्वामी जी ने सोचा, इस पर भी कुछ हुआ कि कमंडल उनके हाथ में आ गया और वे कुटिया में गए ।

औरत अब भी अचेत थी। परन्तु उसके होठों पर कष्ट सहनेवाली एक अजब मुस्कान रम रही थी, जिसने मानो भामंडल की तरह उसके चेहरे को अपने वृत्त में लिया था, स्वामी जी पर पहली चोट इसी मुस्कान ने की।

'पाप शान्त हो।' उन्होंने चिंघाड़-दहाड़ कर इस प्रकार कहा कि कुटिया के छप्पर को छेद कर उनकी ललकार अपनी प्रतिध्वनि से पास की पहाड़ियों की नींद उचटा कर लौट आई। और शांति की आँखें खुलीं और स्वामी जी को लगा—मुस्कान फैल कर और बड़ी हो गई है। यह तो शायद नारी की वही मुस्कान है जो बरसों से उनका तिरस्कार, मज़ाक करती रही है।

'पानी।'

स्वामी जी ने असमय अपनी कुटिया में आई इस अपरिचित क्लांति के कंठ को जल से आर्द्र किया। फिर भी क्लांति थी कि साधु के हाथों को कम्पित कर गई और छलक-छलक कर जलधारा शांति की गौर ग्रीवा पर बहती उसके वक्ष को भिगो गई। पानी पीते-पीते ही शांति ने करवट बदली और वह पुनः निस्पन्द पड़ी रही।

स्वामीजी एक छलांग में, तूफ़ान की तरह कुटिया के बाहर आ गए। अपना चिमटा उठाया और वन का पथ पकड़ा।

कोई दस-बारह कदम गए होंगे कि विचार आया अबला ने फिर जल की याचना की तो? तू सेवा से वंचित रह जायगा, और आत्माराम प्यासा ही लौट जायगा, रे!

स्वामी जी लौट आए।

उन्होंने धूनी में लकड़ियाँ डालकर उसे तेज किया।

पद्मासन लगाया और नयन मूंद लिए। ढीली पायलवाली सुगौर पिंडलियाँ सामने आईं। सिरहाने दबा हाथ आया। निस्तब्ध स्पन्दन के झूले पर झूलता वक्ष उभरा। बिखरे-बिखरे वसन और चिपकी-चिपकी चोली देखी। कजरारे केश लहराए। कपोल प्रदेश पर विराम लेते इयरिंग झलके और फिर तो चाँद-चितेरे के गुरु विधना की बनाई सम्पूर्ण मूरत सामने आई। स्वामीजी का साधु मन थर-थर काँपने लगा। उन्होंने भगवान् के 'मार-विजय-प्रकरण' का ध्यान किया। भर्तृहरि के नारी-निंदक श्लोकों का चिंतन किया। फिर भी कोई जादू था, कोई अनजानी ताक़त थी कि सैलाब की तरह बढ़ी आ रही थी। और लो, अब तो वह मुस्करा रही है!

स्वामी जी ने आँखें खोलीं। आधे मील पर नग्न खड़ी चट्टानें दूध में नहा रही थीं। पूर्णेन्दु उनके सामने अधर लटका किसी अज्ञात दिशा में आने का आमंत्रण दे रहा था। स्वामी जी को रात रोज़ की अपेक्षा आज अधिक शीतल, गहरी और मादक लगी।

फिर अचानक जैसे श्मशान में सोया प्रेत जागा हो! स्वामी जी उछलकर खड़े हो गए और उन्होंने अक्षयकुमार के वक्ष पर पड़े पवनपुत्र के घूंसे की तरह बलवन्त एक घूंसा अपने सीने पर मारा! इधर-उधर देखा, मानो किसी शत्रु की खोज में हैं, और चिमटा उठाकर पटापट अपनी पीठ पर चलाने लगे—"पातकी, अधम, क्षुद्र। और ले, और ले।" इस प्रकार वे अपनी देह में बसे कामदेवता को सज़ा दे रहे थे।

क्रोध में अपने आप को भूले, बड़बड़ाते स्वामी जी कुटिया की ओर देखते दूर भागने की कोशिश में लम्बे डग भरने लगे

और पैरों-पड़े जिस-जिस कंकड़-पत्थर ने रोक लेना चाहा उसे उठा कर दिशा-दिशा में फेंकते चले। जितना बचते थे, उतना बँधते थे। पैर मन मन के हो गए थे। दम फूल गया था। आँखें क्रोध में इस कदर जलीं कि राह नहीं सूझती थी। बड़ी-सी एक शिला का सहारा पा बैठ गए। मन शांत हुआ। पवन से प्यास बुझी। चिमटा गड़ाया और पद्मआसन लगाया तो आसन की ओर नज़र गई—'शिला, कठोर पाषाण!'

'नहीं, शिला, सुंदर शिला' पुरुषोत्तम के स्पर्श से सुन्दरी अहिल्या बनने वाली शिला।' कानों में किसने कहा? किसी ने कहा हो, मन ने सुना, गुना।

स्वामी जी के लोचन—कमल जो खुले तो सामने अहिल्या मुस्करा रही थी। भूमि की शैया पर बांईं करवट लेटी, बाहु का सिरहाना बनाए, ढीली पायल पहने! मार के अचूक महामंत्र-सा पायल-रव आया आया। आया· · ·आ या।

जिस मंत्र से इन्द्रासन हिले, उसके लिये पद्मआसन क्या? स्वामी जी फिर उठे और फिर भाग चले। और कोई था, कोई भूत या अभूत, देव या गन्धर्व जो पीछा कर रहा था। उनसे चलते जब न बना तो रोष में रुक गए, वापस मुड़े और बोले—'ठहर, तेरा सिर फोड़ दूँगा।' उन्होंने चिमटा चलाया पर कोरे वातावरण में घूम कर लक्ष्यहीन चिमटा लौट आया और हाथ को झटका लगा। पल में पाँच सौ क़दम पीछे हट कर, वार से बचता, मार वैरी अट्टहास कर उठा! फिर तो एक, दो, दस, बीस, नहीं—पचासों रिपुओं ने उन्हें घेर लिया। स्वामी जी हवा में चिमटा चला-चलाकर चिल्लाने लगे—'जा, जा, कायर! भस्म हो जा, भाग जा, चला जा, पापी, पाखंडी

तेरी यह मजाल ! मैं बाल ब्रह्मचारी ! फूँक में उड़ा दूँगा, भस्म कर दूँगा। ए-क-लिं-ग ! किधर गया भोले शंभु !··· इस प्रकार चिमटे के प्रत्येक चलन के साथ स्वामी जी के चरण धूनी और कुटिया की ओर लौट रहे थे। मन वश में नहीं था। इन्द्रियाँ छलने लगी थीं। जिस तूफ़ान पर सवार होकर स्वामी जी कुटिया से निकले थे, उसी पर बैठे पुनः प्रविष्ट हुए। भीतर आते ही एकदम शांत हो गए। दृष्टि की निर्ममता ममता में बदल गई। रस और माधुर्य ने मोह लिया। एक नशा उठा कि जिसकी एक ठोकर में लोक-परलोक अपना भान भूल गए !

कुटिया में आते ही तूफ़ान थम गया। जैसे कुटिया की देहली उनके लिये लक्ष्मण-रेखा है। स्वामी जी ने शांति की ओर देखा, वह अब भी वैसी ही लेटी थी—दीन-दुनिया और अपने आप से बेखबर। उसके चेहरे की थकान गल गई थी और उसे देखने से ज्ञात होता था, वह कोई सपना देख रही है, क्योंकि उसके रेशमी अधरों पर एक मंद, मोहक मुस्कान थी।

स्वामी जी ने निस्तब्ध निशा में दूर तक दृष्टि डाल कर देखा—अमृत की वर्षा हो रही थी। पूर्ण यौवना रात अठखेलियाँ कर रही थी। समस्त प्रकृति सृष्टि-रचना का शाश्वत गीत गा रही थी। स्वामी जी का आत्माराम बोला, इसकी इस अजस्र वर्षा से अनभीगे भाग जाना चाहते हो ! सम्पूर्ण सृष्टि, सचर, अचर जिसमें समाए हैं, उस रचना-रूपिणी नारी से, उस जीवन-दात्री से दूर जाकर क्या मरण का वरण करोगे ?···नहीं···नहीं, ऐसा तो मेरा प्रण नहीं।

लेकिन असंयम और पाप ?

पाप ! हा-हा तुमने पुण्य का ठेका लिया है, ओ धर्मात्मा मन की स्वाभाविक गति में कहीं पाप नहीं। पुण्य आत्मा का धर्म है। आत्मा का गुणात्मक प्रतिबिम्ब है। शरीर की मांग को बुभुक्षित रख कर, तुम आत्मा का तर्पण करने चले हो ब्रह्मचारिन् ? 'संयम' के अश्व पर बैठ कर तुम लोकपथ पार करने के प्रयासी हो ? तब तो आत्म-प्रवंचक, तुम इतना भी नहीं जानते कि लोक स्वयं संयम है। वह प्रजा है, सृष्टि है। 'प्रकृति' नारी के सम्पूर्ण सम्मोहन का साकार वरदान है। कामना तो तुम्हें मुक्ति की भी होगी ? है न। तो, कामना और मुक्ति दोनों एक ही रेखा के दो बिन्दु हैं। कामना और मुक्ति दोनों एक ही दशा या दिशा के दो नाम हैं। कामना देह-रति है। मुक्ति आत्म-रति है। रति को तज कर, तुम विरत कब हुए वैरागी !

'शांत पापम्...'

पाप तो तभी शांत हो गया जब तुमने कामना की। अब तो पुण्य-प्रतिफल की प्राप्ति के लिये प्रस्तुत हो जाओ। रजनी का सिंगार कुम्हला जायेगा, सन्यासिन्, रात बीत रही है ! जब बीतते हुए पलों की तरह एक-एक कर तारे झर जाएँगे और शशि-बाला निराश होकर लौट जाएगी, तो तुम अमृत से वंचित रह जाओगे ! और अभिलाषाओं के रन्ध्र रख कर तुम अपने पुण्य-पात्र में मुक्ति का अमृत संचित न कर सकोगे। प्रजा न रहेगी तो तुम्हारा यह तप-त्याग आत्मनाशी हो जाएगा।

स्वामी जी को लगा कि आज वे अपने को पहचानने में

समर्थ हुए हैं। संसार से दूर पलायन करके नहीं, संसार में रह कर ही वे मुक्ति और कल्याण की साधना कर सकते हैं।

फिर उन्हें खिड़की में झाँकते चाँद का चेहरा नजर आया। तन-मन की संज्ञा लौट आई।

'पानी !'

कमंडल फिर उठा, परन्तु इस बार स्वामी जी के हाथ काँपे नहीं। ओह, साकार मुक्ति मेरे द्वार प्यासी पड़ी है।

शीतल जल से कंठ जब गीला हो गया, शांति ने जिस प्रकार कमल की पंखुड़ियाँ खुलती हैं, उस प्रकार धीमे-धीमे अपनी सालस पलकें खोलीं। उस वैभव को देख कर, पास झुके स्वामी जी का श्वास थम गया।

भीतर से अचेतन और बाहर से चेतन शांति मुस्कराई। उस मुस्कान को स्वामी जी के विरागी अधरों ने झेल लिया।

फिर कुटिया का द्वार बंद हो गया।

"मैंने कहा, सो गए क्या अनुराग ?"

ठाकुर समरसिंह की आँख जब न लगी तो उन्होंने पूछा।

"नहीं होकम, मैं तो बारह-एक से पहले नहीं सोता।"

"और मैं भी जाग रही हूँ।" अचला ने कहा।

"मुझे तो रात में नींद ही नहीं आती। एक तो रातों जगने से आदत पड़ गई है। दूसरे पिछली ज़िन्दगी के कारनामे जब नजरों में घूमते हैं तो नींद पास नहीं आती। तब ऐसा मालूम होता है, नींद भी मुझसे डरती है और घृणा करती है।"

"मामा सा, कौन से कारनामे नज़रों में घूमते हैं ?"

"मैंने पहले ही दिन तुझे बता दिया था कि रतनगढ़ की राजगढ़ी में 'कौन' और 'क्यों' के प्रश्न नहीं किये जाते।"

"लेकिन यह तो गढ़ी नहीं है, काली खोह है ?"

"तुमसे, मैंने कहा, शैतान समझे। तू फिरंगी को चकमा दे आई तो मेरा क्या ! क्यों अनुराग ?"

"जी होकम ! आज के शहरों की लड़कियाँ चंचल तो हैं परन्तु चतुर भी हैं।"

अनुरागसिंह दोनों नावों में पैर रखना चाहता था। ठाकुर को वह नाराज़ नहीं कर सकता था और अचला के मन को अनजाने भी ठेस नहीं पहुँचाना चाहता था।

"बात यों है अचल"—ठाकुर समरसिंह ने अपने बिछौने

से उठते हुए कहा—"रामपुरे की डकैती में हमारे दल का हाथ था। वहाँ के थानेदार को हमारा इरादा मालूम था। उसने समझौते के बहाने दल के एक आदमी को बुलाकर, धोखे से मार डाला और इस प्रकार उसने तरक्की पाई और साथ ही लोगों में अपना रोब ग़ालिब करना चाहा। दल ने बदला लेने का निश्चय किया।...मैंने कहा...सुनती हो न, तुम्हें नींद तो नहीं आती ?"

"मैं ठीक सुन रही हूँ। कुछ सुनने के लिए जीवन भर जाग सकती हूँ।" संकेत अनुराग की ओर है यह वह समझ गया। मस्त फकीर ने उसके हाथ को पढ़कर जो कुछ कहा था, क्या सच होने जा रहा है ? अनुराग को अपने मिशन में जैसे साथी की जरूरत थी, वैसा ही मिलने जा रहा है ?

"दल की आज्ञा हुई कि मैं दो और साथियों के साथ थानेदार के घर जाऊँ और उसके पूरे परिवार को उस पार पहुँचा दूँ। थानेदार के परिवार में पाँच प्राणी थे।"

"क्या पाँचों की हत्या हुई ?"

"तू बहुत उतावली है अचला। जीवन में इतनी व्यग्रता अच्छी नहीं, मैंने कहा, सुन रहे हो अनुराग ?"

"हाँ होकम...परिवार में पाँच प्राणी थे..."

"एक रात हमने अवसर देख कर छापा मारा और दो स्त्रियों और तीन बच्चों को गला दबा कर मार डाला।"

अचला 'हाय' कह कर चीख उठी।

"क्या इसी 'हाय' 'हुई' के बल पर क्रांतिकारी दल का निर्माण करोगी ?" अनुराग ने पूछा।

"निर्मम हत्या तो राष्ट्रीयता नहीं है।" अचला ने तुनक

कर कहा। आज तक उसे एक भी तरुण न मिला था, जिसने उसकी भावना का मज़ाक किया हो।

अनुरागसिंह चुप न रहा—"यहाँ, बात बदले की चल रही है। हत्या-अहत्या का निर्णय नहीं हो रहा है। प्रतिशोध किसी प्रकार का विचार नहीं करता।"

"इसीलिए, केवल प्रतिशोध अंधा होता है।"

"क्या भगतसिंह के साथी अंधे थे जिन्होंने राष्ट्रीय अपमान का बदला सान्डर्स की हत्या से लिया ?"

"देशप्रेमियों और डाकुओं के बदले में अन्तर है।"

"सवाल भावना का है।"

"भावना भी विशेष अवस्था में शुद्ध-अशुद्ध होती है।"

"मैंने कहा, अब बंद करो यह बहस। थानेदार के जिन कुटुम्बियों को हमने मारा, उनमें उसका इकलौता नन्हा लड़का भी था। वह अपनी माँ के स्तनों से चिपटा दूध पी रहा था। उसे छीन कर मैंने दो ही उंगलियों से गला दबोचा था कि वह बिना रोए चल बसा। तब से उस नन्हें का मृत शव मेरी आँखों में घूमता है, खासकर सांझ के उस समय, जब मन्दिरों में आरती होती है और गाँव की गलियों के सारे कुत्ते एकत्र होकर भोंकते हैं। सांझ से आधी रात तक उन मृत व्यक्तियों की छायाएँ मुझे परेशान करती हैं।"

"और थानेदार के बारे में कहना आप भूल गए"—अनुराग ने याद दिलाया।

"मैंने कहा थानेदार, थानेदार तो इस विपदा के बाद पागल ही हो गया। बच्चू के होश-हवास जाते रहे। कपड़े लत्ते फ़ेंक कर कहीं भाग गया।"

"शायद कहीं चला गया हो। जीवन से निराश, ऐसे

व्यक्ति या तो पागल हो जाते हैं या · · ·"

"जय एकलिंग !" अचानक आवाज़ उठी।

ठाकुर और अनुरागसिंह तन कर खड़े हो गए। उन्होंने अपने शस्त्र सँभाल लिए।

"दामा, देख तो कौन है ?"

कुछ पल पश्चात् दामा लँगड़ाता लौट आया—"हो · · हो · · कम · · हो कम अपना रूपा है।"

"उसे आने दो।"

रूपा ने झुक-झुक कर दोनों को नमस्कार किया और अचला की ओर देखता चुप खड़ा रह गया। उसकी चुप्पी का कारण अपरिचित अचला है, यह जान कर ठाकुर समरसिंह बोले—"यह तो भांजी कुंवर हैं। अब हमारे साथ रहेंगी।"

रूपा आश्वस्त हो, इधर-उधर देख कर बोला—"मालिक, कल शाम को मालवा-एक्सप्रेस में खजाना जा रहा है। गाड़ी खंडवा-अजमेर लैन पर दलौदा रुकेगी और पानी लेगी।"

"मालमत्ता कितना है ?"

"कोई डेढ़ लाख। लोहे की तिजोरियाँ होंगी। इसके अलावा, उसी गाड़ी से महाजनों की शादियों में मंदसौर प्रताप गढ़ जाने वाला बम्बई का संघ भी होगा।"

"खबर तो अच्छी है।" अनुराग ने रूपा के संदेश की सिफारिश में कहा।

"हमारे पास वक्त कम है। रूपा, तुम ढोल बजवाकर पांचों पुरवा के आदमियों को इकट्ठा करो, हमें अभी फैसला करना है।"

अचला के लिए यह अनुभव नया था। उसने काँग्रेस के जलसे देखे थे और अपने दल की व्यवस्थित कार्यवाही में उसने भाग लिया था। लेकिन, इस प्रकार आधी रात बीते किसी नए अभियान की तैयारी उसने नहीं देखी थी। वह बड़े उत्सुक नयनों से मामा की ओर देख रही थी, मानों वह कहा चाहती है कि इस यात्रा में वह भी जरूर साथ आएगी।

अचला अपने हठ को लेकर अचल है। बालपन से लेकर आज तक उसने जो सपने देखे, उन्हें स्वप्न मात्रा ही न रहने दिया गया। उसने अपनी समस्त कल्पनाओं की पूर्ति उनकी प्रत्यक्ष परिणति में पायी। साहसपूर्ण रोमेन्टिक जीवन ने सदैव उसको लुभाया है। इस समय जो उसने एक्सप्रेस का संदेश पाया तो, वह अपनी योजना के अनुसार अवसर का लाभ उठाने के लिए प्रस्तुत हो गई। इतने रुपये से दल का पुनर्संगठन होगा और फिर देश की आज़ादी के लिए शस्त्र उठेंगे।

ठाकुर समरसिंह अपनी इस भाँजी को न पहचानते हों, सो बात नहीं। वे छिपी दृष्टि से अचला के मनोभावों को पढ़ रहे थे और अनुराग के प्रति उसका आकर्षण उनसे छिपा नहीं रह सका था। कुछ ही घड़ियों के संपर्क से अचला और अनुराग–किरण और ज्वार की तरह निकट आने का यत्न कर रहे थे, किन्तु किरण आकाश में थी और ज्वार धरती पर था। दोनों के बीच की दूरी थी कि जो दोनों को बाँधे हुए थी। यह दूरी, वर्ग, विश्वास, श्रेणी, मान्यता अहम् और ऐसे ही जाने कितने बादलों से घिरी थी।

सहसा काली खोह के समस्त वातावरण को गुंजाता हुआ

घनघन दमामा बज उठा। गहरी नींद में अलसाकर सोई, किसी सेठानी के समान इस मझरात की नींद उचट गई। दूर-दूर तक अवनि-आकाश और पहाड़ियों को प्रतिध्वनित करता हुआ वाद्य-स्वर लौट कर जैसे दमामी के पैरों में निढाल गिर पड़ा। उसके पीछे-पीछे अनगिनती मशालें जल उठीं और दल के आदमी झुंड के झुंड एकत्र होने लगे। अचला ने देखा, शिव जी की बरात के भूत-प्रेतों से हैं ये भील-मीने। दिन में जो मेहनत मजदूरी ये करते हैं, उससे पेट नहीं भरता। रात में ये इधर-उधर चोरी कर लेते हैं या किन्हीं सरदारों के नेतृत्व में डाके डालते हैं और लूट-पाट मचाते हैं। जिस दिन ऐसा कोई मनोरजंक कार्यक्रम नहीं रहता, उन दिन ये या तो ग़ैर-कानूनी शराब बनाते हैं, या अपनी किसी रखेल या प्रेमिका से मिलने पगडंडियों के पार चले जाते हैं। या आपसी गाली-गलौच पर गला कटवालेते हैं।

टेढ़े-मेढ़े रास्ते पार कर सारा समाज एकलिंगजी के मंदिर के चौगान में आया। यहीं तो अचला वेशधारी द्वारा लाई गई थी और यहीं स्वामी जी महाराज ने उसे देखकर आँखें मूंद ली थीं, मानों वह कनकलता की कली नहीं, बिजली की कटार है अथवा छिपकली है। अचला के मन में उस समय बड़ा रोष उत्पन्न हुआ था, परन्तु समुपस्थित समुदाय को स्वामी जी के प्रति समर्पित देख, वह कुछ न बोली।

पत्थर की एक बड़ी शिला पर ठाकुर समरसिंह बैठ गए। तीन-चार आदमी मशालें लिए उनके इधर-उधर खड़े हो गए। अचला और अनुराग पास में खड़े थे। सर्वप्रथम ठाकुर ने रेल के खजाने का जिक्र किया। इस सम्वाद का समुदाय पर ऐसा

असर पड़ा कि सभी सदस्य चलने को तत्पर हो गए, लेकिन सरदार की माँग केवल चुने हुए डेढ़ सौ जवानों की थी।

जब आक्रमणकारी-दल के लोगों का चुनाव हो गया तो समरसिंह बोले—"और मैंने कहा, इस लड़की का फैसला भी हमें अभी करना है। दोपहर की सभा में यह लाई जा चुकी है। यह पुरुष-वेश में इस इलाके में पकड़ी गई थी····"

"इसकी सजा मौत है।"

अचला सुनकर मन ही मन मुस्कराई। आखिर वह कितनी बार मरेगी। आन्दोलन के दिनों में वह कई बार लाठी और गोलियों से मरते-मरते बची। कई बार क़ानून ने उसके सिर के लिए दांव लगाया, लेकिन अचला है कि मौत को छल कर निकल जाती है। अब यह डाकू-दल उसकी जान का गाहक बना है।

"लेकिन यह राह भूल कर काली खोह के जंगल में भटक गई थी। और मैंने कहा गमेतियो, यह मेरी बहन की बेटी है····।"

समुदाय में कोलाहल मच गया—"आपने पहले ही यह न बता दिया।"

ठाकुर समरसिंह ने अचला को सभी के सामने उपस्थित करते हुए आगे कहा—"अब यह हमारे दल की सदस्या है, शहर में हज़ारों लोग इसके हुक्म पर चलते हैं। यह फिरंगी की जेलों से दो बार भाग निकली है····" इतना सुनते ही सब लोगों ने तालियाँ बजाईं और 'वाह-वाह' कहा। ठाकुर बोले—"रेलगाड़ी का जो विचार हमने किया है उसको अचला की देखरेख में पूरा करना होगा। तुममें से बारह आना लोगों ने

रेल नहीं देखी। मैंने कहा, अचला ने मुझे बताया कि हमें बुराई में जीते हुए बरसों बीत गए, अब कुछ भलाई भी लेनी चाहिए, उसके लिए जो कुछ करना है उसकी तफसील में जाने का मौक़ा यह नहीं है, लेकिन मैंने और अनुराग ने तो उसे मंज़ूर किया है।"

"तो हमें भी मंजूर है, कुँवर बा जो कहेंगी उसे अपनी जान रहते पूरा करेंगे।" सुनकर अचला सब के देखे खुली मुस्कराई और सब को नमस्कार किया। उसकी इस मुक्त मुस्कान को अनुराग के तरल नेत्र पान कर रहे थे परन्तु वे इसकी मादकता और अनबुझी खुमारी से बेख़बर थे।

अनुराग जिस राह पर जा रहा था, वह उसके लिए नई थी।

ठाकुर के बाद बोलने की बारी अनुराग की थी—"आप लोगों ने जो तय किया है, उसे देख-सुन कर मैं बहुत खुश हूँ और चाहता हूँ कि हमारे पिछले सभी हमलों से यह हमला बड़ा और अचूक हो। अब आप लोग रावले का हुक्म लेकर जय एकलिंग कहें और पहले की तरह रात में चलने और दिन में भेष बदल करें, इधर-उधर सड़क से हट कर, विश्राम लेने का प्रबन्ध करे ··· अपनी-अपनी टोलियाँ बना कर रवाना हो जाएँ और कल दिन में जब सूरज-बावजी चार बाँस चढ़ जाएँ तो सब लोग मंदसौर के क़िले के पीछे लाल इमली के नीचे बरातियों के रूप में मिलें। जय एकलिंग!"

उत्तर, स्वीकृति, निश्चय और हर्ष के प्रतीक 'जय एक-लिंग' का उद्घोष उठा। उसकी पवित्रता से कजरारी रात का कलुष धुँधला पड़ गया। और दल के सदस्यों की

अन्तरस्थ श्यामलता पिघली। एक-एक कर दल के सूरमा लौट गए। मृत्यु का यह आमन्त्रण पाकर वे प्रसन्न हुए। मृत्यु उनके लिए खिलौना थी। उसी से खेल-खेलकर वे बड़े हुए थे। विविध रूप में वह उन्हें रिझाती-खिझाती रही थी, परन्तु कभी छल न सकी थी।

जब रामा हज़ूरी ने घोड़े तैयार होने की सूचना दी तो समरसिंह और अनुरागसिंह अपने-अपने घोड़े पर सवार हुए। अचला ने भी फिर अपना पुरुष वेश सँवारा और कन्हैया की पीठ सहलाई। पहली बार जब इस अश्व पर सवार हुई थी तो गुप्तगंगा की गुप्त गुफाओं में पहुँची। इस बार उसकी यात्रा दलौदा के रेलवे स्टेशन तक है, जहाँ अँग्रेज़ की रेलगाड़ी रुक कर रहेगी और अचला के हाथ में होगा डेढ़ लाख रुपया—नए दल के लिए, नए प्रोग्राम के लिए और नए साहस के लिए।

अचला अपनी अवस्था के प्रति प्रसन्न थी और उसकी प्रसन्नता आसमान में जगमग सितारों में व्यक्त थी। आशा और उमंग की तरंगों से जब किसी का हृदय-सागर आपूरित होता है तो वह कितना सुखी और सुधीर होता है !

'जय एकलिंग'

—समरसिंह ने गर्जना की।

'जय एकलिंग'

—अचला और अनुराग ने सम्मिलित स्वर में दुहराया और तीनों ने अपने घोड़े तीर की तरह छोड़ दिए।



भोर की ठंडी हवा ने शांति की थकान को दूर कर दिया। जब उसकी आँखें खुलीं तो, वह अधिक शांत और तृप्त जान पड़ती थी। मगर, दीपबाती-सी एक लौ आँख में जल रही थी, जिसके उजाले में शांति ने एक अन्तहीन डगर पायी थी।

गोरी बाँहें पसारकर पहले उसने एक अँगड़ाई ली। उसे अपनी आँखें कुछ बोझिल लगीं। उसने उसका कारण जानना चाहा और कुछ पल यों ही निर्विचार पड़ी रही। कुटिया को उसने गौर से देखा। उसे लगा कि पहले उसके समीप कोई पुरुष था और इस समय नहीं है।

अपने अहंकार में स्वयं भस्म होकर जीवन से हारकर संयम का अविनीत साधक, अंधकार रहते पलायन कर गया था। कुटिया के उस साथी को छोड़ चला था, जिसने कल रात उसकी कुटिया को राजमहल बनाया था। गंध-पराग पाकर उड़ जाना भँवरों ने पुरुषों से ही सीखा है।

अतृप्ति, अविचार और व्यामोह की संक्रांति के समय, जो स्मृति साथ छोड़ चली गयी थी, वह धीरे-धीरे लौट आयी। छोटी गढ़ी से हजूरी-वास तक की यात्रा फिर शांति के मस्तिष्क में घूमने लगी। उसे यह भी यदि आया कि खेतों और मेड़ों के पास बड़ी चट्टानों के रास्ते वह दौड़ चली थी। कब तक दौड़ती रही, यह तो स्मरण न कर सकी, परन्तु उसे इतना ख्याल था कि वह बहुत दौड़ी थी और एक जगह वह

थक कर गिरी थी। फिर उसने डायन देखी थी ! नहीं, अकेली रात में यों ही किसी परछाईं से डरी थी। काफी देर वह इस सूत्र को थामे उलझती रही कि काली चट्टानों से इस कुटिया में कैसे पहुँची ? और वह पुरुष कौन था, जो यहाँ से उठकर चला गया है ? किसने शांति की देह सहलाई थी ? कैसा रहा होगा वह अपरिचित ? ··· फिर शांति को अपनी मुस्कान याद आई जो किसी परछाईं को सामने देख अधरों पर खिली थी। फिर खिड़की में झाँकता चाँद याद आया और याद आये अपने मुखर पायल ! अतृप्ति और तृप्ति का वह संगम याद आया, रात जिसके तट पर खड़ी रह कर इस ओर वह अकेली लौट आई है। जीवन भर क्या वह अकेली रहेगी ? किसी की राह देखती रह जायगी ? ··· मैं यहाँ क्यों हूँ ? ···

सौ-सौ बिच्छू डंक मारने लगे, जब उसे स्मरण हुआ कि इस पराई जगह कोई पराया हाथ उसकी काया को सहला गया है। कोई था जिसने फूल की एक पंखुड़ी तोड़ ली है। ज्यों-ज्यों चेतना आती थी, शांति अपने से ही सहमती जाती थी।

वह तुनक कर उठी। उस मटमैली चटाई पर बैठ गयी और इधर-उधर, ऊपर-नीचे देख, चोट खाई नागिन की तरह फुँकार कर उठी। अपनी देह और रोम-रोम को उसने पढ़ लेना चाहा। उसे समझ में आ गया ! हाय, जब वह सर्व-नाशी मूर्च्छना में थी, उसका मणि कोई चुरा ले गया।

उसे अपने पर ग्लानि आई। लोचनों में बड़े-बड़े दो आँसू भर आए पर वह उन्हें थामे रही। वह जान गई कि विगत जीवन की वेदी पर ये उसके अंतिम आँसू हैं। फिर कभी न

वह रोयेगी और फिर कभी न ये छलकेंगे। रोना हमें उस समय अच्छा लगता है, जब हमें यह आभास हो जाता है कि हम रो रहे हैं और दुनिया में हम इतने एकाकी और बेसंगी हैं कि कोई आँसू पोंछनेवाला, 'न रो' कहने वाला अपना नहीं है।

शांति ने पाया : गुलाब के फूल की पंखुड़ी टूट गई है। यदि पंखुड़ी न रहे तो फूल में सौंदर्य न रहे और एक पंखुड़ी-जितना रस और गंध भी कम हो जाय। क्या पंखुड़ी टूटने की जगह, गुलाब का घाव भर नहीं सकता ? सूनेपन में यह जो आत्मग्राही कोलाहल गूंज रहा है, इसका शोर क्या कम नहीं हो सकता ? कोई ऐसा नहीं जो इन प्रतिध्वनियों के मुँह बंद कर दे ?

भीतर से—अंतर से आवाज़ आई—'कोई नहीं !'

इस बार आँसू थमे नहीं। ढुलक गए। जैसे भोर के गुलाब पर ओस की दो बूँदें पड़ी हों।

जब आँसुओं ने भी साथ छोड़ दिया तो शांति सहारे के लिए व्यग्र हो गई। उसने भीतर की आवाज़ को भीतर ही दबा लिया। मैं घर लौटूँगी। फूल अपनी ही डाल पर शोभा देता है।

लेकिन, भीतर जो अपना ही वैरी, अपना ही द्रोही बैठा था वह बड़ा कठोर और निष्ठुर था। बोला—'गिरा हुआ फूल अपनी डाल पर फिर से नहीं लग सकता।'

'न लगे फूल, मेरी बला से। मैं फूल नहीं, मानवी हूँ और फूल के लिए जो असंभव है वह मेरे लिए संभव है। प्रत्येक असंभवता और असफलता की सफल सिद्धि का नाम

ही मनुष्यता, नरता, है।'

शांति कुटिया से बाहर आ गई। जहाँ तक नज़र जाती थी, जनहीन एकान्त प्रसरा था। भोर के सरोवर में तरुणी हवाएँ अठखेलियाँ कर रही थीं। उनकी उँगलियों के स्पर्श से सरोज-वन में सिरहन थी। वे कभी कमल-कलियाँ अपनी वेणी में खोंसतीं। कभी एक दूसरी पर पानी उछालतीं। पास के पेड़ों पर पंछी अरोक गा रहे थे, मानों किसी अनादि स्वर की तान इन्हें आज ही पूरा कर लेनी है। कहीं से एक बाल-मयूर उड़ कर आया और अपना नृत्य दिखा कर शांति का मनोरंजन करने लगा।

शांति का मन था कि अब भी जिसकी भटकन बंद न हुई थी। वह आश्रम की एक शिला पर बैठ गई। उसे शकुन्तला की कथा याद हो आई। जब दुष्यन्त ने उसे दुत्कार दिया था! तो क्या इसो प्रकार शकुन्तला का धैर्य उसके गर्भ में था। मैं तो ··· तकेली हूँ। 'अकेली हूँ' इन दो शब्दों की छोटी-सी स्वीकारोक्ति और इनकी नन्हीं-सी घूँट शांति को कड़वी से कड़वी लगी। कभी-कभी तो सत्य वत्सनाभ के विष से भी अधिक प्राण हर हो जाता है!

उसे यह अपना ही प्रश्न स्पष्ट सुनाई दिया—'काश, मेरे भी आज शकुन्तला की तरह कोई शिशु होता!'

शिशु की चाह, कल्पना और आनन्द की तृप्ति को विधाता भी भली-भांति नहीं जानता है, अन्यथा वह किसी की गोद सूनी न रखता।

उसे यह विचार वेग से काटने लगा कि घर लौट जाना चाहिए। बड़ी गढ़ी और छोटी हवेली के सारे प्राणी जाग गए

होंगे ! उसे न पाकर कितना हो-हल्ला मच जायगा ? और लगा जैसे हवेली के ऊपरी एकान्त कक्ष में रेशमी पलने में सोया उसका शिशु चिहुँक कर रो उठा है। वह रात भर भूखा रह गया है और अब नन्हें-नन्हें पैर फेंकता रो रहा है। उसे जल्द जाना चाहिए !

जरूर, जल्द जाना चाहिए, शायद आज अमरसिंह उसके यहाँ मेहमान बनें और उसे यों अस्त-व्यस्त पाकर लौट जायें। एक तीखी कसक हृदय में चुभने लगी। शिशु का रुदन तीव्र हो चला और उसने जब दासी की गोद से उसे लेने को अपने हाथ फैलाये तो हाथ ज्यों के त्यों खुले रह गए ! वह सिसकने लगी।

"गुरुदेव ! जय एकलिंग, महाराज ! अट्ठा खुल गया है। भगवन् ने तो दो दिन पहले ही बता दिया था।"····जवान लौट आया था। उसने रात में छक कर पी थी सो अब भी लड़खड़ा रहा था। गांजा, तमाखू, भंग, ताड़ी, चाय और शराब में से कोई भी पेय पीना और सट्टा लगाना जवान की दिनचर्या थी। शेष समय वह स्वामी जी महाराज की सेवा में बिताता था और जब स्वामी जी प्रसन्न हो जाते तो पुकार उठते—"जा 'बसा' ! गुरु का ध्यान पक्का, तो लगा दे छक्का !" इससे जवान का कुछ खर्च चल जाता था।

इस समय वह आठ का अंक खुलने की खुशी में विभोर था। अतएव अपनी ही धुन में था—"महाराज ! जीता गुरु का पट्ठा, खुल गया है अट्ठा !"—दोनों हाथों से वह सुरती फांकता आता था। अपनी रिपोर्ट को स्पष्ट सुनाने से लिए, वह स्वर को मध्यम से तीव्र की ओर ले गया—"महाराज, पैले ही कै

दिया था सो अपने राम ने किसन सेठ से कहा गुरु का आसीर-बाद है सो जग झूठा, बचन सच्चा। ला दे, एक पांच का पत्ता अट्ठे पर लगाना है। मगर उस कंजूस ने पाई न निकाली। आज बड़ी भोर उससे कहा-सुनी हो गई। अपने राम बोले—किसन सेठ, ला चालीस रुपये! वह बोला—कौन से रुपये! मैंने कहा—अट्ठा जो खुल गया। तूने पाँच उधार दिये होते तो आज मुझे बाज़ार में चालीस मिल गए होते और यह नौबत न आती। अब तुंई भुगतान कर, वरना गुरु की फूँक से भस्म हो जायगा।

अब तक वह कुटिया के द्वार पहुँच गया। लड़की को अकेली देख 'एँ' कह कर एक कदम पीछे हट गया और सिर पर एक हाथ छुआ कर कुछ सोचा। उसे याद आया कि यह तो वही छमिया है, जिसे रात अकेली पाकर स्वामी जी की शरण में छोड़ गया था। अपने मस्तिष्क की हाज़िरजबाबी और खैरियत पर जवान का खुश होना स्वाभाविक था। उसने भीतर झाँक कर देखा—छमिया बिलख रही है।

"तो रोती क्यों हो? मैं अभी घर पहुँचा दूँगा। यह साधु-सन्तन का संग है। स्वामी जी तो किसी माई का मुँह भी नहीं देखते। रोओ नहीं। बहन, तुम्हें कहाँ जाना है? दुनिया कुछ भी कहे, तुम जवान-जितनी ईमानदारी किसी में नहीं पा सकती, हाँ, आज मेरा चालीस का नुकसान हो गया। किसन सेठ ने पाँच रुपये के पीछे मेरे चालीस का गला घोंट दिया। एकलिंग जी उसको देखेंगे। तुम्हें भूख लगी होगी, लो ये फल खा लो।"—शांति इस अर्धविक्षिप्त व्यक्ति के मन में छिपी मानवता की झाँकी पाकर स्तब्ध रह गई। कहीं यह

भी फुसला कर कुछ छल कर बैठा ?

उसने कहा—"नहीं, भूख नहीं, मैं रावले की बहू हूँ। रात को जी खराब होने से खुली हवा में निकली थी, पर राह भूल गई। रास्ते में गिर पड़ी और फिर जाने कैसे इस कुटिया में पहुँच गई।"

सुनकर जवान की खुमारी काफूर हो गई। कुँवर साहब की पत्नी ! उसका भाई रामा जिनका खास-हजूरी है ! अपनी जान को अरक्षित पाकर बोला—"होकम आप हैं ? मैं ही अन्नदाता को उठाकर यहाँ तक लाया था। हजूर, मुझे नहीं जानतीं—मैं रामा हजूरी का छोटा भाई हूँ।"

"भौजाई गोली (खरीदी हुई दासी) का देवर ?" शांति के स्वर में तिक्तता थी।

"हाँ, अन्नदाता !" जवान हाथ-बाँधे खड़ा हो गया। शांति भौजाई के इस देवर को अपने अपरिचित सहायक के रूप में देखकर मौन रह गई। रात की स्मृतियों की गंध पुनः बलवती बनी। भौजाई की खिलखिलाहट, दारू की भीनी-भीनी बास, रस में सनी दोनों की झीनी-झीनी बातें··· किवाड़ की दरार, बिछी हुई सेज···खेत, मैदान, चट्टान और ठोकरें ! सहसा वह खिलखिलाकर हँस पड़ी। उसकी हँसी को बड़े लोगों की बड़ी बात मानकर जवान चुप खड़ा देखता-सुनता रहा। जिस कुँवरानी के रूप की धूम उसने सुनी थी, आज वह एकांत वनकुटीर में उसके सम्मुख अर्धनग्न, अर्धविक्षिप्त बैठी थी। रात अपनी गोद में उठा कर वह उसे यहाँ तक लाया था। उसने चुपके से शांति को देखा और मन ही मन कहा—धन्य हूँ मै !···

कुँवरानी की सेवा का यह सुअवसर पाकर जवान की प्रसन्नता का पार नहीं था। उसने सोचा कि इसे सुरक्षित पहुँ-चाने पर कुछ इनाम-विनाम भी मिल जाएगा। और इस प्रकार चालीस का टोटा कम हो जाएगा। इनाम मिलेगा। रात में स्वामी जी की सेवा का मौक़ा मिलेगा। परसों तक नया आँक खुलने पर हार जीत में बदलेगी। और कौन जाने ठाकुर इनाम में कोई बढ़िया कोट ही देदे। जवान के मन में एक अच्छा नया-सा कोट पहनने की लालसा कई बरसों से है। कोट मिले तो, अवश्य उसे पहन वह इस साल अम्बामाता के मेले में जाएगा। 'वाह'···'जवान तेरा तो किस्मत खुल गया।' किसन सेठ खुशामद करेगा। दूर हट···चालीस के चोर···'वाह'···! वह खुशी से अपनी हथेलियाँ मलता रहा। नजर झुकाए खड़ा रहा। हुक्म की प्रतीक्षा करता रहा।

यों ही काफी समय बीत गया। शांति ज्यों-ज्यों दिमाग के जाले दूर करने का प्रयत्न करती थी, त्यों-त्यों वे उससे चिप-टते जाते थे। जब हम हाथ से मकड़ी के किसी जाले को हटा देते हैं, तो वह हमारी उँगलियों पर झूल जाता है, फूंक मारते हैं और वह उँगली से चिपट जाता है। यही दशा शांति के देखे विगत दृश्यों की थी। अनेक प्रकार की भावनाएँ मन में उठ रही थीं—घर से दूर कहीं भाग जाना चाहती थी, जहाँ अपना कोई न हो। किसी वीराने में एक कुटिया हो और कोई हो जो उसका पति हो, प्रेमी हो—जो उसकी चिन्ता-फिक्र करे और रात में देर से न आए और स्नेह ले-दे सके। इस जवान-सा···नहीं-नहीं। मैं यह सब क्या सोचती हूँ···मैं अमर की परिणीता हूँ··· फिर से रात्रि के पर-पुरुष-स्पर्श की याद आई

और पतिव्रता का अपना गर्व स्मरण हो गया—वह बिलखने लगी। परन्तु आँखें एकदम कोरी थीं। हृदय में एक भारपूर्ण गुबार था जो उठकर कंठ को अवरुद्ध करता था, किन्तु आँख से बरस कर झरता नहीं था! ······काश, मेरे एक बालक होता, उसे लेकर कहीं चली जाती, उसका मुख देखकर उसके सहारे जीती!—स्त्री जब पति की ओर से निराश हो जाती है तो पुत्र का प्रेम-प्रश्रय उसको जीवित रखता है। शांति के पास वह भी नहीं था। इसलिए उसकी आशा-निराशा सघन थी।

"गुलाम के रहते अन्नदाता को क्या फिकिर है?"

शांति ने 'ना'—सूचक सिर हिला दिया। आँचल से ग्रीवा और मुँह पोंछा, फिर बोली—"तुमने ब्याह किया है, जवान!"

"अन्नदाता ने खूब पूछा। जवान की फिकिर हुजूर को न हो तो किसे हो! वाह मेरे भाग! होकम लड़कियाँ तो मिलती हैं, पर उनके बाप कहते हैं जवान तो सटोरिया है, पियक्कड़ है।"

"जीवन एक बहुत बड़ा सट्टा है, जवान! सो, कौन सटोरिया नहीं? और पीने की भली कही, सारी धरती पीती है। इन मेघभरे बादलों को देखो!"

"हाँ, अन्नदाता।"

"तब"···और शांति को ख्याल आया, भौजाई के साथ अमर का संबंध! एकान्त पाकर भी, यह 'नीच' कहा जाने वाला व्यक्ति मुझसे दुर्व्यवहार नहीं कर रहा है! और 'उच्च' कहा जाने वाला अमर? शांति के मन में अजानी घिन भर गई। और किसी ने भीतर से पूछा—'छोटी हवेली लौटेगी? या इसके साथ···छिः। उसने अपना सिर थाम लिया।

"अब हुक्म हो तो मैं अन्नदाता को गढ़ी तक पहुँचा दूँ?"

'हाँ जवान !' शांति ने इतना ही कहा। वह खड़ी हो गई। लेकिन, उसके मन में न तो लौट जाने का विचार था, न रुक रहने का। एक प्रवाह था जो उसे बहाये ले जा रहा था।

कुछ दूर जाकर उसने सोचा कि ठीक है जो वह घर जा रही है। उसका स्थान वहीं है। पौधा अपनी क्यारी में ही खिल सकता है। क्यारी में—सीमा और घेरे में—नहीं…… नहीं। अचला ठीक कहती थी। अचला यदि होती !…… इस बार वह अमरसिंह की खूब सेवा करेगी। तन-मन से उसकी देख-रेख रखेगी। अपने हाथों उसे भोजन कराएगी। वह चाहे कितना ही रुष्ट हो जाए, शांति अपने मार्ग से विचलित न होगी…और इससे ज़रूर उसके एक नन्हा शिशु होगा। गोरा-गोरा, प्यारा प्यारा !…या नन्हीं बालिका हुई अचला–जैसी–मीठी-मीठी !…इस विचार से उसके मन को संतोष मिला और पति-सेवा के सुख की कल्पना उसे अपने भ्रम में लेने लगी। जल्दी-जल्दी उसके क़दम उठने लगे। वह न जवान की ओर देखती थी, न राह की ओर, वह चली जा रही थी, उसके पास, जिसे छोड़कर भाग चली थी। जैसे भूखे शिशु की कल्पना से अकुलाती माँ आँधी की तरह अपने डेरे पर लौटती है, वैसे, ठीक वैसे, शांति बढ़ रही थी। उसके मन में न हार-जीत की, न प्रेम-नेम की, न प्यार-मनुहार की शिकायत थी, एक प्यास थी। बस, एक ही ललक और लगन थी कि उससे वह दूर हो गई है, जिसे उसके स्नेह और सहारे की ज़रूरत है। कुछ पाने की कामना नहीं थी। अपना सर्वस्व किन्हीं चरणों में सँजो देने की उत्कंठा थी।

नए पवन की लहरियाँ उठी और उन्होंने पहले शांति के सिर से आँचल उड़ाया फिर उसकी अलकों को बिखरा दिया। परन्तु, उनके शीतल स्पर्श से शांति के थके हुए तन और बोझिल मन को चैन मिला। इस समय वह निरवलम्ब थी, पर निर्विकार थी। इसलिए शांत थी।

वे दोनों काली चट्टानों के पास पहुँच गए थे। जवान ने इंगित करते हुए कहा—"उस जगह आप बेहोश थीं।"

शांति लजा गई। उसके मन में यह प्रश्न उठा कि उस वक्त कहीं उसके अधोवस्त्र तो अस्त-व्यस्त न थे ? इस विचार के साथ, उसका अन्तर गहरी लज्जा से गड़ गया और शर्म से मुख पर ललाई उभर आई। अपनी परेशानी छिपाने के लिए उसने ध्यान बटाना चाहा। नजरें उठाईं तो देखा, काली चट्टानों की गोद में एक मतवाली बदली झूम रही है। अपने अरस-परस से उसने चट्टानों की श्यामलता को और भी घना कर दिया है और उन्हें एक स्निग्ध चिकनाई दी है।

"बदलियों के किनारे रुपहरी गोट कैसी है ! अब ये बरसेंगी ?"

"यही लगता है, लेकिन हवाएँ तेज होती जा रही हैं। ये बादलों को बिखेर देंगी। शायद न भी बरसें। फिर भी, हमें जल्दी चलना चाहिए। राह-गढार पर कोई बैल गाड़ी मिल जायगी। वरना, आप थक जाएँगी।"

"मेरी चिन्ता न करो।" शांति पूछना तो चाहती थी कि थक जाऊँगी तो क्या अपनी गोद में उठा लोगे या पीठ पर चढ़ाए ले चलोगे ? किन्तु, मन ने साथ न दिया। यदि इस समय जवान के साथ उसकी स्त्री होती तो, जरूर यह उसे

उठा ले चलता। जरूर दोनों इन चट्टानों पर कहीं बैठ कर दो बातें करते। वह रस भरे लोचनों से इसकी ओर देखती अपलक, तिनके से माटी कुरेदती हुई या कंकरों से खेलती हुई और यह उसके रस की खुमारी में बादलों सा उड़ता रहता।

सहसा, पीछे से मेघ गड़गड़ा उठे ! उनकी गर्जन चट्टानों से टकरा कर, प्रतिध्वनित होकर और भी भयानक हो उठी और शांति औचक ही जवान से चिपट गई। तभी बिजली चमकी और उसके उजाले में शांति ने जवान के अबोध वदन को देखा।

बिजली बुझ गयी और शांति ने धीरे-धीरे जवान का सहारा छोड़ दिया। बदलियाँ रिमझिम-रिमझिम बरसने लगीं।

अवनी-अम्बर का अनादि रास आरम्भ हो गया।



१४

ठाकुर समरसिंह का घोड़ा आगे-आगे चल रहा था। अचला और अनुराग उनके पीछे थे। छिटकी हुई जुन्हाई में जब अमृत-तरंगिणी हवाएँ बह रही हों प्राण स्वप्नों के स्पर्श से जागृत हों, जिसे देखते रहना चाहते, हों—वह साथ हो, तो कौन परवाह करेगा कि पंथ किधर ले जाता है ? मंज़िल जब ध्यान में हो तो, राहें चाहे कितनी ही विकट और बेढ़ंगी हों, राही पहुँच ही जाता है।

सहसा अचला ने सोचा यदि अविनाश यहाँ होता ? इस दशा में उसे देख कर खुश तो होता, भले, उसे यह संग न सुहाता। अविनाश और अनुराग में कितना अंतर है। दोनों के अपने रूप और दिशा-लोक हैं। उन रूपों और दिशाओं को वह पा सकेगी ? दोनों में से किसी एक · · ·। छिः, फिर वही विलासी विचार, जब तक मुल्क की आज़ादी नहीं, अचला का अपना अस्तित्व नहीं · · ·

"देखो, वह सूअर निकला। कुँवर तुम्हारे कहे उड़ा दूं इसे"—मामा ने पूछा।

अचला की विचार-तंद्रा टूटी—"जैसी आप की मर्ज़ी"।

किंतु इसके पहले कि ठाकुर अपना निशाना बनाएँ, अनुराग ने उन्हें रोकते हुए कहा—"जाने दीजिए, क्या करेंगे, इस निरीह प्राणी को मार कर ?"

"तो मैंने कहा जाने दो। अचल, हमारे अनुराग को शिकार से नफ़रत है।"

अचला को यह कुछ विचित्र लगा। जो व्यक्ति अपनी लूट में अनेकों निरपराध लोगों को बन्दूक की गोलियाँ खिलाता रहा है, वह शिकार नहीं करता है—सुन कर किसे विश्वास होगा ?

अचला का विश्वास उसके पारदर्शी मधुर वदन पर झलक आया और अनुराग ने सहज ही उसे पढ़ लिया। बोला—"कुँवर बा, बात बहुत गहरी है। पशु-शिकार के मेरे कुछ अनुभव हैं, जिनके कारण मैंने उसे छोड़ दिया है।"

"जरा मैं भी सुनूँ।"

"कहो, रास्ता कट जाएगा। और हमें भी ज्ञान की सीख मिलेगी। अनुभव सबसे बड़ी शिक्षा है।" ठाकुर बोले।

"जैसा रावले का हुक्म"—अनुराग ने तनिक सिर झुका कर कहा और सावधानी में आगे-पीछे देख लिया, क्योंकि इस दल की सुरक्षा का भार उस पर था। फिर उसने अपनी बात शुरू की—

"मालवा में हम लोग सूअर को 'हूर' कहते हैं···"

अचला को व्यंग्य सूझा—"और हूर को सूअर कहते हैं ? कम से कम ऐसा समझते जरूर हैं आप के लोग ! माफ कीजिए मैं आप के प्रति वाक्य भंग की अपराधिनी हूँ।" अचला का ताना सुनकर ठाकुर मामा जोर से खिलखिलाए और अनुराग भी मुस्करा दिया। उसने अपनी बात चालू रखी—"हूर मारने की कला मैंने अपने काका साहब ज़ोरावर-सिंह जी से सीखी थी। मुझे याद है जब हम बहुत छोटे थे तभी वे आँगन में निशाना सिखाया करते थे।"

"अर्वली पर्वतमाला की एक छोटी-सी रेखा हमारे गाँव

के बाहर आकर रुक गई है, जैसे कोई नव परिणीता पतिगृह की देहली पर आकर दो पल थम जाती है ! अर्वली की पहाड़ियों पर सूअर के दल निर्द्वंद्व विचरते हैं। मुझे अपनी शिकार पर गर्व रहा है, परन्तु काका सा के सामने बालक ही रहा। वे कहा करते थे कि अनुराग, जब हम छोटे थे तब ऐसी बढ़िया बन्दूकें नहीं मिलती थीं। उस समय तो हम शेर और चीतों से कुल्हाड़ी और भाले लेकर भिड़ जाते थे। कई जवांमर्द तो उनसे पहलवान की तरह गुँथ जाते थे, कुश्तियाँ होती थीं। अब वह जमाना और वे आदमी कहां ? एक-एक फुट लम्बी नोकदार मूँछें। आँखों में आग बरसाता तेज ! किसी की हिम्मत, जो उनके सामने आँख उठाकर भी देख ले ! हम लोग अपनी जवानी में दो-दो बकरे बगल में दबाये गढ़ी के परकोटे पर अधर दौड़ जाते थे।··· जाने दो, पिछली बातें, अब तो अंग्रेज ने चाय पिला-पिला कर सबको निकम्मा बना दिया। तोपों की सलामी देकर राजाओं की आजादी छीन ली और अखबार में फोटू छाप कर उनका बचा हुआ राज्य ले लिया।

"मध्यकाल की सामन्तवादी परम्परा पर प्राण अर्पण करने वाला वह व्यक्ति, बदलती दुनिया की चाल समझने में अयोग्य था। हाँ, व्यक्ति में जितनी उदारता और परोपकारिता होनी चाहिए, ज़ोरावरसिंह जी में थी। आज का व्यक्ति कोरी बात बढ़ा कर अपनी अकर्मण्यता पर पुताई करता है, पहले ऐसा नहीं था। इन और ऐसी सब बातों का अर्थ तो यही हुआ—दुनिया एक क़दम आगे और एक क़दम पीछे रखती जा रही है।

"यदि आप हमारा गाँव देखें तो विस्मित रह जायें। मैंने यात्रियों के लिए रेलवे कम्पनी द्वारा वितरित प्रचार पत्र देखे हैं, जिनमें जयपुर शहर और नासिक के चित्र हैं, परन्तु हमारे गाँव उनमें नहीं हैं, जहाँ हमारी संस्कृति सुरक्षित रही है। और विदेशियों को हमें अपने प्रकृति-वैभव का दर्शन करने के लिए निमंत्रित करना चाहिए।"

"आप विषय से दूर जा रहे हैं।"

"मैं अपने शिकारी जीवन की रोमांचकारी घटनाएँ आप को बताऊँगा, जिनसे आप जान सकेंगे कि पशुजगत् किस अवस्था में है। आज तक का मेरा अनुभव तो यही कहता है कि हिंस्र कहलाने वाले पशुओं में मनुष्य से अधिक करुणा, उदारता और समता है। इन गुणों की दृष्टि से मानव कहलाने वाली सृष्टि अधिक पिछड़ी हुई है।

"मैं विषयान्तर में नहीं बह रहा हूँ। प्रकृति की उस गोद की ओर आप का ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ, जो बरसों से सूनी पड़ी हुई है। हमारे गाँव के पूरब में गौतमेश्वर के विस्तृत मैदान और झरने हैं। यहीं से भयंकर खोह और नाले हैं जहाँ विराट्-स्वरूप प्रस्तर खंड हैं, शिलाएँ और अनन्त जल है। दूसरी ओर पहाड़ियों में होकर हमारे गाँव की राह है। सीधा पहाड़ चढ़ कर प्रवेश करना पड़ता है। शेष दोनों दिशाएँ भी पहाड़ों से बंद हैं। मैं नहीं जानता आज तक किसी ने इन पर्वतों को लाँघ कर, पार जाने का साहस किया है! इस प्रकार हमारा गाँव प्याले में रखे लड्डू के समान पहाड़ों के बीच में बसा है।

"इन निकटवर्ती वनों में शेर, चीते, तेंदुए, बाघ, रीछ,

सूअर, अजगर, नीलगाय, हिरन, खरगोश और अनेक प्रकार के पशु-पक्षी रहते हैं।"

"शेर और सूअर से किसी ग्रामवासी की मुठभेड़ होना, हमारे यहाँ विशेष घटना नहीं मानी जाती, जिस प्रकार राह चलते दो मित्र मिल जाते हैं, उसी प्रकार हमारे ग्रामवासी शहर से लौटते हिंस्र पशुओं की भेंट स्वीकार करते हैं। आए दिन ग्रामीण-स्त्रियाँ किसी रीछ या तेंदुए को मारने की कहानी लिए घर लौटती हैं।

"तेंदुआ, रीछ और सूअर, ये तीनों निकृष्ट कोटि के पशु हैं। ये भयंकर वदला लेते हैं और इनमें भी तेंदुआ तो बड़ा ही ही चालाक और धोखेबाज होता है। वह आप के शहरों में रहने वाले जेबकतरों की तरह अचानक और अनजाने वार करता है। राह चलते व्यक्ति पर आक्रमण करना या उसका पीछा करना उसकी क्रीड़ा में सम्मिलित है। इसके अलावा आदमखोर बाघ होते हैं। परन्तु, असली शेर तब तक आक्रमण नहीं करते, जब तक कि उन्हें सताया न जाय। एक बार मैं अपनी विचारों की दुनिया में खोया पगडंडी पर चला जा रहा था कि दो-चार गज पर एक पेड़ के नीचे बैठे सिंह को देखा, एक क्षण भी झिझके बिना अपनी राह चलता गया, शेर ने एक नज़र उठा कर दूसरी ओर मुँह फिरा लिया, मानों तुच्छ मानवी को परेशान करना या मारना अपनी शान के खिलाफ समझता है!......"

बीच में ठाकुर बोले—"लेकिन शेरनी होती तो आप पर झपटती।"

"जी, मगर आजकल की शेरनियों का मुझे अनुभव नहीं है।"

बात अचला की ओर बढ़ रही थी। बोली—"अनुभव की ज़रूरत नहीं। सिंहनी झपटती नहीं। शिकार खुद उसकी ओर चला आता है।"

समरसिंह को फिर ठहाका लगाने का मौक़ा मिल गया। इस बार हँसी से उनकी मूंछों के बाल फहरा गए। अनुराग ने आप बीती का प्रवाह जारी रखा—

"हमारे गाँव से उत्तर वाली पहाड़ियों में कुछ गुफाएँ हैं। लोग कहते है पहले यहाँ ऋषि-मुनि रहते थे। पर, आज तो वहाँ 'सूअर' रहते हैं। उनकी संख्या और विविधता का अनुमान भी नहीं लगाया जा सकता। जब वे काफी भूखे होते हैं, तो गढ़ी के पीछे की ओर आ जाते हैं, जहाँ गढ़ी की महिलाएँ उन्हें झरोखों से मक्का और जुवार डालकर पुण्य लूटती हैं। जिस प्रकार भेड़ों का लम्बा-चौड़ा रेवड़ हो, उस प्रकार और आकार का समूह इन हूरों का होता है।

"रावले से जब कोई नवयुवा पहली बार 'हूर' की शिकार को जाता है तो कुल कन्याएँ मंगल कलशों से उसे विदा करती हैं। बड़े-बूढ़े सिखावन देते हैं और माताएँ सावधान रहने को कहती हैं।

"जब मैं कोई पन्द्रह-सोलह वर्ष का था, पहली बार, अकेला, सूअर की तलाश में निकला।

गर्मियों के दिन थे, अतः मुझे विश्वास था कि सूअरचंद पानी के लिए जलाशय के निकट जरूर पधारेंगे। पर, जलाशय के निकट उससे छेड़ करना खतरे से खाली नहीं था। क्योंकि, गोली लगते ही सूअर कीचड़ में लोटने लगता है और उसका घाव भर जाता है। तब वह अपने शिकारी पर भयंकर आक्र-

मण करता है। वह इस वेग से दौड़कर आता है कि उस वेग कोरोक लेना बड़े-बड़े हाथियों के लिए भी कठिन होता है। सूअर की यही दो बड़ी शक्तियाँ और अस्त्र हैं; कीचड़ और उसकी वेगवन्त दौड़!

"तो उस दिन जंगल में कुछ दूर जाकर पत्थरों के विशाल खंड के पीछे मैं सुरक्षित बैठ गया और राह देखने लगा कि सूअर कब आएँ!

"काफी देर प्रतीक्षा करने पर,दोपहरी की उष्णता के कारण मुझे ऊँघ आ गई। जब आँख खुली तो साँझ का सूरज ढल आया था और छायाएँ जलाशय के किनारे बैठीं जल-दर्पण में अपना रूप निहार रही थीं। मुझे हवा में एक विचित्र गंध का भान हुआ। मैंने पत्थरों की अपनी कोठरी से सिर ज़रा बाहर निकाल कर देखा। एक-दो-दस नहीं, सैकड़ों सूअर मेरे चारों ओर जमा थे, मानो सूअरों का सम्मेलन हो रहा हो। मैंने तुरन्त सिर छिपा लिया और दुबक कर बैठा रहा। इस ग़ैर-क़ानूनी भीड़ पर गोली चलाना भी ग़ैर-क़ानूनी था! मैं, असहयोगियों के इस मजमें में किस-किस पर, आखिर कितनी गोलियाँ चलाऊँ! सामूहिक शक्ति के सामने प्रहारक शिकारी की शस्त्र-शक्ति कितनी निरर्थक एवं निर्बल है, यह मुझे पहली बार प्रत्यक्ष दिखाई पड़ा!

"साँझ ढल कर हलकी चाँदनी फैल गई। पर, सूअरों के समूह घर न लौटें, न मैं यह सोच पाया कि इनसे किस प्रकार मुक्ति पाऊँ। मुझे कोई मार्ग नहीं दिखाई दिया और मेरा हृदय धड़कने लगा।

"जिस प्रकार पराजित और शक्तिहीन व्यक्ति निस्सहाय

होकर हिंसक हो जाता है, उस प्रकार मैं झीख उठा। मैंने सोचा, आज पहला दिन है यदि कोरे हाथों, सिर नीचा किए घर लौटूंगा तो रावले की क्या दशा होगी ? पहले हूर की प्राप्ति की आशा में राह देखते हजूरी मुझे क्या समझेंगे। रावले तो मेरा मुँह देखना भी न चाहें ! और रात्रि में गायन-वादन के जिस सभारंभ की तैयारियाँ की गई हैं, उसका क्या होगा ? क्या गानेवालियाँ यों ही घर लौट जाएँगी ? इन प्रश्नों को सुलझाने के लिए मैं अपनी समस्त शक्ति लगाए था कि एक बड़ा सा सूअर कोठरी के पत्थर को ढेलने का प्रयत्न करने लगा। मैंने जान लिया कि सूअर मेरी अवस्थिति जान गए हैं। वह चालाक हूर अपने लम्बे नथूने को कोठरी के एक सूराख में डाल कर थाह लेना चाहता था। बार-बार वह अपना नथूना अन्दर डालकर, निकाल लेता था कि और गुर्राता था ! मुझे पाषाणों की इस गढ़ी के पार चारों ओर से सूअरों की पद-चाप स्पष्ट सुनाई देने लगी। उनके सम्मेलन में यह संदेश फैल गया था कि एक मानवी हमारे बीच पत्थरों में छिप कर बैठा है और उसे यदि पा लिया जाय तो बढ़िया दावत बन सकती है। इस विचार से मेरा रोम-रोम भींग उठा ? बिदा देती माता जी की प्रेम-पूर्ण दृष्टि याद आई। 'क्या करूँ ?' यही एक प्रश्न था। मैंने अपने पिताजी की वीरता का स्मरण किया। सहसा काका साहब के वे कथन मुझे याद आए जब हमारे पूर्वज शेर-चीतों और सूअरों से निरस्त्र भी भिड़ जाया करते थे !

"मैंने शहीद होने का संकल्प कर लिया।

"मेरी नस-नस में पुनः रक्त प्रवाहित हो चला। मेरा

चेहरा तमतमा आया। मैंने अपनी राइफल का कुन्दा कंधे पर जमाया और नथूना डाल कर मेरी कोठरी को अपवित्र करने वाले सूअर के नथून में गोली चला दी। भयंकर चीख के साथ वह धराशायी हो गया। मुझे भगदड़ की ध्वनि सुनायी दी। दो-चार मिनट के पश्चात् मैंने सिर निकाल कर देखा। सूअरचंद चारों खाने चित्त पड़े थे। शेष सभासद् कहाँ गए? क्या एक ही गोली इतनी बड़ी सेना के लिए पर्याप्त थी? मेरे मन में रह-रह कर संदेह उठ रहा था। कि हो न हो, ये सूअर कुछ दग़ाबाजी करने जा रहे हैं! पत्थर हटा कर मैं बाहर निकल आया। घाटी के ढाल पर नदी के पार पगडंडी का रास्ता रोके सारी सेना मेरी प्रतीक्षा कर रही थी! पीछे हट इस मोर्चे बन्दी की उनकी समझदारी पर मैं चकित रह गया! फिर भी मुझे हँसी आ गई! वे मुझसे काफी दूर थे, अतः बाहर निकलकर मैं एक बड़ी शिला पर बैठ गया। मेरी तैयारी थी कि यदि इन्होंने वार किया तो पुनः अपनी गढ़ी में प्रवेश कर लूँगा।"

अपनी घोड़ी राधा की रास खींचते हुए अनुराग जैसे सांस लेने को रुक गया। मगर बात यह थी कि दोनों घोड़ों की रास ढीली छोड़ दी गई थी। और अचला का कन्हैया बार-बार राधा की ओर अपना मुँह बढ़ाए लाता था। अचला को यह अच्छा न लगता था और वह तैश में आ रही थी। उसने कन्हैया को एक हंटर जमाया और अनुराग मन ही मन मुस्काया। फिर बोला—"मैंने शिला का सहारा लेकर एक सूअर पर गोली चलाई। बड़ी देर से वह मुझे घूर रहा था। गोली का वार चूका नहीं। परन्तु उसका पिछला पैर ही

घायल हुआ। वह तत्काल ही कीचड़ में लोटने लगा। इस बार भी शेष सूअर भाग निकले और सामने की पहाड़ी पर चढ़ने लगे। परन्तु घायल हूर क्रुद्ध हो गया था। जब वह जल से बाहर आया तो मुझे खोजने लगा, मैं तुरन्त शिलाओं की ओट हो गया। वह अपने स्थान पर डटा रहा। उसकी हिमाक़त देख कर मैं बाहर निकल आया। मेरी हिमाक़त इस कारण भी बढ़ गई थी कि उसके शेष साथी पलायन कर चुके थे। मैंने उसे ताककर गोली चलाई और वह वहीं ढेर हो गया!

"राइफल का घोड़ा अपने स्थान पर भी न जा पाया था कि मैंने पीछे से छोटे-छोटे पत्थरों की खड़-खड़ सुनी और चौंक कर देखा। एक दैत्याकार सूअरनी मुझे मार डालना चाहती थी। एक पल में मैं पत्थरों की ओट हो जाना चाहता था पर समय नहीं मिला। अवश्य ही वह नदी किनारे शहीद होने वाले सूअर की जीवन-संगिनी होगी, जो व्यूह रचना में परम प्रवीण थी और उसके पति ने मेरा ध्यान बाँटने के लिए स्वयं मैदान में उपस्थित रह अपनी संगिनी को झाड़ियों के गुप्त मार्गों से मुझ तक भेजा था।

"अपने पति के शत्रु को सम्मुख पाकर वह वेग से मेरी ओर दौड़ी। मैं अपने स्थान पर अड़ा रहा। जब वह तीव्रतम गति से दौड़ती मेरे बिल्कुल पास आ गई तो तत्क्षण मैं एक ओर हो गया। वह अपने वेग के आयोग में काफी दूर निकल गई। सम्भवतः रुकने पर उसने नदी के पार देखा, जहाँ उसके पतिदेव समाधिस्थ थे। वह एकदम नदी के पिछले जल में कूद पड़ी और उस पार पहुँची। अपने साथी के आस-पास चक्कर

काटकर वह उसे सूंघने लगी। मानों यह जाननी चाहती है कि अब उसमें प्राण शेष हैं या नहीं !

"पूरब की ओर नुकीला चाँद निकल आया था। हल्की चाँदनी वनान्तर पर विखरी थी, जैसे रात की दुल्हन ने अपनी भींगी चूनर सूखने के लिए फैला दी है। आहत सूअर के निकट उसकी संगिनी सूअरानी निराश और उदास बैठी थी। मेरा मन कसक उठा ! अब तो ऐसा लगता था, वह मुझ पर वार नहीं करना चाहती है। सारा वैर विरोध उसने विसार दिया है। अपने संगी को खो देने की मर्मान्तक पीड़ा के सम्मुख, वैर और मृत्यु-भय उसके लिए नगण्य थे।

"इस वन-नारी की निश्चल और निश्छल प्रेम-परम्परा को देखकर मेरी आँखें भर आईं ! कहाँ हमारी तलाक चाहती आधुनिक शिक्षिता महिलाएँ, जो पति को साधारण टाईफाइड हो जाने पर छूत के भय से भाग खड़ी होती हैं ? कहाँ यह सूअरनी, गंदी भद्दी सूअरनी—जिसमें अपने साथी के लिए छलाछल प्रेम लहरा रहा है। मैं देरतक वहीं बैठा रहा गया।

"मुझे लौटने में बड़ी देर हो गई, इस भय से रावले ने सेवकों को भेजा। मशालें और ढोल लिए वे लोग मेरे सम्मुख पहुँचे तो मेरी तन्द्रा भंग हुई। दोनों मरे सूअरों के देह देख वे मुझे बधाइयाँ देने लगे और जोर-जोर से ढोल बजाने लगे और आखेट के समय गाए जाने वाले वीर-गीत गाने लगे, जो सदियों से इन पहाड़ियों में इसी प्रकार गाये गए हैं और इसी प्रकार वनान्तरों में गूंजे हैं। गीत—जो इन्सान की 'सूअर' पर प्राप्त विजय के उद्घोषक हैं ! फिर भी इन खुशियों से मेरा मन खुश न हुआ। सूअर के प्रति सुअरनी की द्रवित आत्मी-

यता, मुझे बार-बार कुरेद रही थी।…पर कुछ समय बीतने पर अपने जातीय एवं क्षत्रिय-स्वभाव वश में आयोजित मंगलावलियों में खो गया और दोनों शिकारों के कटे अंगों को उपस्थित सेवकों को बाँटने लगा। जब घर लौटा तो रावले ने मुझे बधाई दी। अपनी मूंछों पर ताव देकर उन्होंने इधर-उधर देखा और मुझे गले से लगा लिया, आज उनके सुपुत्र ने दो राह चलते निरस्त्र सूअरों को गोली मारी थी !

"मैं हँस-बोल रहा था, परन्तु मेरे मन की अवसन्नता का अवसाद चेहरे पर स्पष्ट झलक रहा होगा, तभी पिताजी ने कहा—'बापू, निरस्त्र व्यक्ति पर गोली चलाना, क्षत्रिय-धर्म के विपरीत है। अन्याय और परम पाप है, किन्तु हिंसकों और फसल नष्ट करनेवाले सूअरों को मारना पाप नहीं। फिर युगान्तरों से हमारे पूर्वज जिस मार्ग पर चलते आए हैं, जो हमारा कुलधर्म है, उससे विपथगामी होना अनुचित है। गीता ने यही कहा है।'

"तो, क्या गीता भी अन्यायी सूअरों को मारने का आदेश देती है ? ···· यही सोचते-सोचते मुझे नींद आ गई। नींद में स्वप्न में मैंने नदी के किनारे पड़ा मृत सूअर और उसके निकट मातम मनाती सूअरनी को देखा। व्यथा से शराबोर मैंने एक चीख भरी और मेरी आँखें खुल गईं।

"उस दिन के बाद मैंने शिकार खेलना छोड़ दिया। हाँ, जब कभी मित्र-सम्बन्धी नहीं मानते, उनका मन रखने चला जाता हूँ ! पर बन्दूक लेकर नहीं। साथी मेरे शिथिल स्वभाव की हँसी उड़ाते हैं पर वे क्या जानें, अनुराग के अन्तर में कौन-कौन सी भावनाएँ राज रही हैं।" ······

अचला सोच रही कि सूअर की कथा लेकर अनुराग अपने महत्व की भूमिका बना रहा है ! जाने अचला का स्वभाव था, जाने उसकी कमज़ोरी थी कि किसी के व्यक्तित्व की प्रशस्ति उसे असह्य थी। उसे भय था कि उस विस्तीर्णता की परिधि में वह स्वयं छोटी न पड़ जाय ! और अपने को किसी की सत्ता के विस्तार में विलीन कर देना अचला का अन्त नहीं था। सो, जब अपनी आपबीती कह कर अनुराग चुप हो गया तो, अचला ने कहा—'हूँ'।

और अनुराग ने सोचा, इतनी बड़ी बात के बदले यह इतना छोटा 'हूँ'।



पानी जब बरसने लगता है, तब रुकता नहीं। शांति के सारे कपड़े भीग गए और भीग कर इतने भारी हो गए कि उन्हें देह पर सँभाले रखना कठिन हो गया। आदमी के भीगे कपड़े पंछी के गीले पंख-जैसे तो नहीं कि फड़फड़ा कर सुखा लिया। इस दिशा में आदमी एक नन्हें पंछी से भी मजबूर है। मजबूरी आदमी के लिए गीले कपड़ों जैसी है। उसका दूसरा नाम असुविधा है। वह व्यक्ति को अनावृत्त-दिगम्बर बना देती है!

जवान ने शांति की मजबूरी भाँप ली। बोला—"होकम···मैं आँख बंद किए लेता हूँ, आप पोशाक निचोड़ कर सुखा लें और मेरा यह कम्बल ओढ़ लें।"

शांति को जवान की बात सुनकर हँसी आ गई—"कुछ पिए हो क्या?"

"पीता तो रोज हूँ। आपसे झूठ नहीं बोलूँगा।"

"तभी!"—इस पर भी उसकी हँसी न रुकी।

इस व्यक्ति में कैसी सरल-निश्छलता है। कितना भोला-पन है! कहा उसने—

"मैं उस चट्टान की ओर कपड़े सुखाए लेती हूँ। तुम यहीं रहना!"

जवान ने सिर हिलाकर आदेश स्वीकार किया और परमहंस की तरह निर्लेप, अपनी समाधि-तंद्रा में लीन हो गया। शरीर, इन्द्रिय और मन के सारे व्यापारों का मार्ग

अवरुद्ध कर उसने उन्हें लक्ष्य विंदु में केन्द्रित कर लिया। रोम-रोम और शिरा-शिरा में जब 'छक्के-पंजे' के रूप में राम रमने लगा तो, उसने पूछा—"बोल मेरे एकलिंग कल क्या खुलेगा ?"

शांति शिलाओं की आड़ में चली गई थी। जाकर वहाँ, उसने वसन उतार दिए। सोचा, आदमी देखती-दुनिया के भय से पर्दा रखे, सो बात नहीं, पर्दे में तो वह और भी निरावरण हो जाता है। पर्दा खुद, बेपर्दगी का इज़हार है। इस सोच विचार में, कंचुकी की कसें जो पीछे पीठ पर बंधी थीं, आपस में उलझ गईं। शांति ने उन्हें खींच कर तोड़ दिया। आज उसे सभी बन्धनों से चिढ़ हो आई थी। जी चाहता था, सारी सीमाओं को पैरों-तले रौंद कर दूर जा बसे! रनिवास में रहते-रहते उसका दम घुट गया था। वह अब घूँघट उलट कर, पर्दे झकझोर देना चाहती थी!

उसने एक-एक कर कपड़े निचोड़े और उन्हें हवा में लहराया। चट्टानों की गोद में वह सर्वथा सुरक्षित थी। एक बड़ी-सी शिला उसके सिर पर छाया करती, आगे निकली हुई थी। बाहर की तूफ़ानी बरसात की ध्वनिमात्र यहाँ सुनाई देती थी। और ठंडी हवा में जितनी शीतलता और नमी थी, लगता था, उतनी ही बरसात बाहर बरस रही है। इससे अधिक वर्षा का अस्तित्व इस स्थल पर बैठे-बैठे, मिलना मुश्किल था। जब कोई व्यक्ति जीवन के आँधी-झंझा और कष्ट-आपदा से रक्षित अपने वातायन में बैठा रहता है तो उसके लिए यह जान लेना कठिन होता है कि आँधी कैसी होती और आप-

दाओं में आदमी को क्या-क्या सहना पड़ता है ? सुरक्षा और भावी की निश्चितताएँ मनुष्य को दूसरे के दुख के प्रति बेमन बना देती हैं। वह अपने ही सुख को सहेज रखने में निमग्न रहता है। अपनी सुविधा के पोषण में वह इस प्रकार स्वार्थरत रहता है कि कोई उसकी छाया में तड़प रहा है, यह भी देखने की उसको फुर्सत नहीं मिलती; मिलती है, तो भी, वह देखना नहीं चाहता, क्योंकि अन्य का कष्ट देखने से हृदयस्थ कर्त्तव्य उसे प्रेरित करता है ! और उस प्रेरणा को दबा देना पड़ता है। अपने सुख और सुविधा के उपकरणों को जुटाने में, किसी भी प्रकार उन्हें प्राप्त करने में, वह इस प्रकार लगा रहता है कि अपना स्वार्थ उसे सिर उठाकर देख लेने की मोहलत भी नहीं देता ! स्वार्थी अपने ही हाथों मरता है।····

चट्टानों के आँचल में रक्षित शांति अपनी साड़ी और लँहगे को बारी-बारी से झुलाती रही। विरहिन के भीगे कपोलों की नमी के समान, उसके वेश की नमी धीरे-धीरे अदृश्य हो रही थी। वह आदि नारी-सी पूर्ण विवसना चट्टान की शिला से पीठ टिकाए खड़ी थी और ऐसा लगता था मानो वर्षा की रानी अपने ही आवेग और आवेश के विस्फोट को सँभाल न सकी है और अब खुद उससे बचने के लिए शिला की छाँह में आ छिपी है ! काली शिला की पृष्ठभूमि में, उसकी कनक-वर्ण काया अंधकार में जलने वाली दीपबाती-सी लग रही थी ! पावस के तूफ़ान और बवंडर जिसे अपने बीच न पाकर बावले हो गए थे और अब इस खुली गुफा के द्वार पर गहरा रहे थे ! पवन की हल्की-ठंडी तरंगों से शांति का गात सिहर-सिहर उठता था, थकान इससे गल कर, जा रही

थी और एक नई ताजगी आ रही थी। क्षितिज के छोर पर बिजली शांति के देह-वैभव का गीत गा उठी और उसके उजाले में शांति ने अपनी रतनारी काया को देखा। दो पल उसकी निगाहें न हिलीं, न डुलीं !.....

फिर उसने एक लम्बी और गरम उसांस ली, और ऊपर नीचे नज़र डाल कर, जैसे आप अपने से शरमा गई हो, लँहगे के फूंदे कटि पर कस लिए। रेशमी कंचुकी भीगने से कड़ी हो गई थी, बंद भी उसके टूट गये थे—शांति ने उसे वहीं छोड़ दिया और वक्ष प्रदेश को आकंठ साड़ी से दुराए वहाँ आ गई जहाँ जवान कल-खुलनेवाले 'अंक' का अनुमान लगा रहा था !... खुली देह में बरसाती बयार लग जाने से शांति 'सी-सी' कर रही थी। वह अपने अधर-सम्पुट को भींच कर रखना चाहती थी, पर वह खुल ही जाता था। अब वह अपने को काफ़ी स्वस्थ महसूस कर रही थी। जी भी कुछ हल्का हो गया था। मन में किसी के प्रति कोई कलमष नहीं रहा था। संतान का सपना आँखों में भरा था। पति की गोद में शरण लेने का पुनर्प्रयत्न प्रबल हो गया था। जवान के प्रति वह तन-मन से अनुगृहीत थी, जिसने इतना कष्ट उठाकर, उसकी सहायता की थी, जिसने निर्जन एकान्त पाकर भी उसे छला नहीं था। शांति का मन कृतज्ञता से गद्‌गद् हो गया ! समाज से बहिष्कृत-सा यह पागलनुमा व्यक्ति कितना विराट् और सत्य है। इसका अन्तहीन निष्कलुष हृदय !

शांति ने जवान के चेहरे को गौर से देखा और देखती रह गई। उसे अच्छा लगा अपने उपकारी का सामीप्य ! हृदय के अन्तराल में बैठी किसी अबोध कामना ने तो कहा—'बिछ

जाओ इसके चरणों में !' लेकिन, बुद्धि की शासिका ने अन-सुना कर दिया—'तुम अमर की अमानत हो। तुम्हारा आदि और अन्त उसी के साथ बँधा है, वह तुम्हारी सीमा है और वही तुम्हारा असीम है। जल्दी करो !···'

"क्या सोच रही हैं, होकम ?" जवान ने शांति के धुले-मुख को, क्षण भर, देखते, पूछा। शांति के मन में चाह जगी कि यह इसी तरह देखता रहे ! ··· न, न, मैं क्या सोच रही हूँ ?··· अपने को बाँध कर बोली—"कुछ नहीं, सोचती हूँ···तुम्हें पूछना चाहती थी—'तुम्हारा ब्याह हुआ ?' और उसी पल सोचा—यह अपनी ब्याहता को कितने सुख से रखेगा !"

"नहीं ! मैं बेकार हूँ।'···"

"तुम कोई खास काम नहीं करते।"

"करता हूँ। मैं गधों की चोरी करता हूँ। इस फन का मैं उस्ताद हूँ। सट्टे के अंक लगाता हूँ। इतना काम क्या कम है ?"

"नहीं" ··· शांति डर गई। "अच्छा, अब हम चल पड़ें। बारिश भी कम होती जा रही है, दो चार बाँस चलने पर थम जाएगी।"

"जी होकम"—जवान उठकर खड़ा हो गया। उसने अपने कम्बल की छतरी बनाकर, शांति के सिर को ठीक-ठीक ढँक दिया।

शांति ने चट्टानों के बाहर क़दम रक्खा था कि थूअर का बड़ा-सा काँटा लगा। लाल-लाल लहू बहने लगा। जवान मुस्करा कर रुक गया—"मेरी जिन्दगी काँटे निकालने में ही जाएगी ! एक दिन मैंने अपनी भौजाई की मेंहदी-लगी-पगतली से एक-एक कर आठ काँटे निकाले।'

"आठ ?" शांति के लोचन विस्मय से विस्फारित हो गए और उनके कोर कानों को छूने लगे !

"पूरे आठ। लेकिन, आपका लहू ज्यादा लाल है"—शांति की उजली पगतली नीचे बैठे जवान की गोद में थी। उसकी उँगलियों के स्पर्श से शांति के पैरों में सुरहरी गुदगुदी चल रही थी। तनिक झुकी-सी वह जवान के कंधे पर एक हाथ टिकाए थी। फिर मन ने कहा—'चलो, यह सहारा छोड़ देना है।'

दोनों चलने लगे। भटकती हुई बारिश को भी जैसे कहीं शरण मिल गयी थी। शांति सोचती रही—अमर और जवान में कितना अन्तर है ! वह मेरी तनिक भी चिन्ता नहीं करता ! पति होकर भी अपति है, मानो मेरा उसका कोई सम्बन्ध नहीं है। सब कुछ पढ़ कर भी वह अनपढ़ है। और यह जवान—यह समाज द्वारा तिरस्कृत व्यक्ति, जो भीतर बाहर पूर्ण स्वस्थ है, जो अपनी बेईमानी के प्रति भी ईमानदार है, जिसकी पहचान कुछ घड़ियों की है, कितना समझदार लगता है, कितना अपना पा इसमें है, मानो जन्मान्तरों का नाता है !

इस बार मन की बागडोर हाथ से छूट गयी। शांति ने ज़वान को अपनी भुजाओं में भर लिया और उसके कंधे पर सिर टिका कर उफन-उफन कर रोने लगी। जवान को अपार अचरज था ! यह क्या हो गया ?

"होकम, क्यों घबरा गई ?" कठिनाई से कह पाया, और वह भी रोने लगा। उसके पास मस्तिष्क का कौशल नहीं था, हृदय का दर्पण था, जिसमें बाहर की परछाइयाँ सहज झलक जाती हैं। अपने स्वार्थ ने जिस पर जंग नहीं लगने दिया है।

एक दर्पण है जो औरों के लिए है। अपना उसके पास कुछ नहीं है। सो, उस दर्पण में शांति ने आज अपनी ही मूरत देखी। जब तक आदमी को, 'अपना आदमी' नहीं मिलता, वह पीड़ा के प्रवाह को थामे रहता है, लेकिन जब कोई अपना-कहलानेवाला मिल जाता तो बाँध टूट जाता है और प्रवाह थामे, नहीं थमता; रोके नहीं रुकता। लोक, समाज और काल तिरोहित हो जाते हैं। दिशा और मर्यादा खंड-खंड होकर गिरते कगार-सी, टूटने लगती हैं।

"कुँवरानी रोओ नहीं। बड़े घरों की बातें भी बड़ी होती हैं। आप की तकलीफ मैं समझ सकता हूँ। रावले में कुँवर साहब के रंग-ढंग ठीक नहीं हैं। लेकिन आपको इससे दुखी न होना चाहिए। मेरा तो आतमाराम कहता है, पुरुष यदि पत्नी को छोड़कर अन्यत्र भटकता है तो, जानकर वह अपनी पत्नी को बुरी (व्यभिचारिणी) बनाता है। कोई जनम भर पिंजरे में बन्द नहीं रह सकता।···" फिर स्वर को नया मोड़ देकर बोला—"आप जवान हैं। गेहूँ के खेतों की नई हिरनी की तरह हैं। जो मन कहे, कीजिए। पहले मेरे एक भावज थी। नख दो तो खून की पिचकारियाँ छूटें। दादा जब बिखर गया तो उसने अपनी राह पकड़ी। ··· होकम, आप भी कहीं चली जाएँ। दुनिया बहुत बड़ी है और धरती के ओर छोर नहीं।"···

"अकेली ?"

"आने को मैं आ सकता हूँ।"

"धोखा तो न दोगे ?"

"प्राण रहते नहीं।"

"लेकिन जवान, मैं विवाहिता हूँ। मैं रावराजा की—बड़े घर की बेटी और बहू हूँ। लोग क्या कहेंगे? मैं आँधी के पत्ते की तरह लक्ष्यहीन भटकना नहीं चाहती। मैंने पति का व्रत लिया है। अपने व्रत को पूरा करूँगी। खुद बदलूँगी और उन्हें भी बदल कर रहूँगी। जवान, जीवन में जो गैल एक बार पकड़ ली, उसे छोड़ देना ठीक है?"

"नहीं। लेकिन, यह बदलने की बात मेरी समझ में नहीं आयी। आप बदल सकती हैं, क्योंकि आप नई डाल की तरह हैं। परन्तु कुँवर साहब पुराने ठूंठे की तरह हैं उन्हें बदलने का संकल्प!··· क्या कहूँ···। आप सब कुछ बदल सकती हैं, आदमी का स्वभाव नहीं बदल सकतीं।"···

"देखना है।"

"देखिए। जवान हर समय हाजिर मिलेगा। एकलिंग जी के मंदिर में आठ पहर रहता हूँ।"

शांति ने उत्तर न दिया। उसे जवान की ये बातें अच्छी न लगीं।

गाँव के गोयरे तक वे आ गए। शांति का कम्बल देखकर गाँव-बाहर रहने वाले कुम्हारों, ढेड़ों और भंगियों के कुत्ते भौंकने लगे। जवान ने कहा—"कम्बल उतार दीजिए।"

शांति ने कम्बल उतार कर जवान के हाथ में दे दिया—"अब मैं चली जाऊँगी"—वह हौले मुस्कराई और एक ओर चली गई।

जवान उसकी दर्द भरी मुस्कान-समेटे, उस लीक को देखता रह गया!



शिवना का कछार आ गया। अनुरागसिंह के संकेत पर घोड़े रुक गये। बोला—"देखिए अचला देवी, हम शिवना के उस महाकुण्ड के निकट.पहुँच गये हैं, जहाँ एक दिन तात्या टोपी की सेना ने अँगरेजी पल्टन का सामना किया था।"

"अचला झांसी की रानी की तरह उसी अँगरेज से टक्कर लेने जा रही है।"

"सरदार का फरमाना ठीक है।"—अनुराग ने अचला की ओर देखते हुए अनुमोदन किया।

अचला का मुख लज्जा से अरुणाभ हो गया। कपोलों पर लालिमा की किरणें चमकीं। अपने रूप, गुण या सेवा की सराहना पर स्त्री का लजाना स्वाभाविक है। सो अचला की लाज को अनुराग देखता रहा। फिर जब अचला की पलकें उठीं तो नजरें दोनों की मिलीं। दोनों ने एक-दूसरे के अन्तर का मर्म पढ़ लिया। लेकिन वे कुछ भी कहने में असमर्थ थे। कर्त्तव्य का बन्धन था। समरसिंह साथ थे। उद्देश्य सामने था। और जिस यात्रा पर वे जा रहे थे, उस पर चलते हुए मन की मनुहार मन में ही रखनी पड़ती है। देशसेवक क्रांतिकारी का प्रेम, किसी अनजाने दिन के लिए सुरक्षित, वाचाविहीन थाती है। किसी पल आकर, पाहुन इसे सँजो देगा। अपनी अमानत लेकर, भार हल्का कर देगा।

फिर भी जाने क्यों मन के बोल अधरों तक आ-आकर रुक जाते थे। उसने कहना चाहा, पर कुछ कह न सकी।

सरदार का घोड़ा बहुत पास आ गया था। अचला ने भी बात बदलना आवश्यक समझा—"मेरा ख्याल है, हमें उस रुपये से अपने दल का नवनिर्माण करना चाहिए और महू से नसीराबाद तक का समस्त प्रदेश नयी व्यवस्था के अन्तर्गत लाना चाहिए। यह नयी व्यवस्था सबके लिए नई होगी।"

"हम भी यही चाहते हैं।" ठाकुर समरसिंह और अनुरागसिंह ने करीब-करीब एक साथ कहा।

कछार की तरुराजि और लतावलियों की मदभीनी बास पवन के झकोरों में झूल रही थी। उसके शीतल स्पर्श से तीनों यात्रियों की थकान मंद पड़ गई। उनके घोड़े जैसे नयी आशा में थिरकने लगे। अचला अपने कन्हैया की चाल समझ गई और ठाकुर ने भी अपने विशाल अरबी घोड़े को थपथपाया। जीवन के अभियान में मनुष्य ने जब से पशुओं से सम्पर्क साधा, तब से तुरंग उसका साथी रहा है। संघर्ष के एकांतवासी साधक सदैव सैन्धव की सहायता लेते रहे हैं। वीरों की चरित गाथाओं में उनके कुछ ऐतिहासिक अश्वों का नाम भी आया हैं। इसे हम मनुष्य का पशु-प्रेम कहें, अथवा पशु का मनुष्य-प्रेम !

ठाकुर बोले—"अब हमें सावधान हो जाना चाहिए। हमारे आदमियों का पड़ाव पास ही पड़ा हुआ है, यह जो ढोलकी की आवाज़ आ रही है, हमारी 'बरात' की है। · · · मेरी राय है अनुराग, तुम दूल्हा बन जाओ और · · ·अचला· · तु · · · म आज के लिए दुल्हिन · · · ।"

"जी" अचला ने इतना ही कहा और वह फिर से शरमा गई। मन की शर्म तन पर झलक आई और अचला को रोमांच

हो आया और जैसे उसने खुद से ही पूछा—पहले तो यह लाज नहीं थी, आज कहाँ से आ गई ? अचला चाहे बेख़बर हो, पर हृदय के आंगन में खिली मौलसिरी तो महक ही रही थी। अनदीखी जो प्यास और खोज थी, वह तो अपनी तृप्ति और अपनी राह स्वयं पा रही थी। चाहे मस्तिष्क और देह अपनी क्रियाओं में तल्लीन हों, पर मन तो अपनी लगन में मगन रहता है।

दामा कंधे पर झोला लटकाये पास की एक झाड़ी में से रीछ की तरह प्रकट हुआ, लँगड़ाता हुआ आगे बढ़ा और सबको अपनी-अपनी पोशाक दी। वह ठाकुर समरसिंह को कपड़े बदलने में मदद देने लगा। अचला अपना नया वेश लेकर पेड़ों की ओट चली गई। अनुराग ने पीला पायजामा और कामदार जूतियाँ पहनीं। गोटे-किनारी वाला झगा पहना और माथे पर मौर लगा साफा रक्खा। हरे मखमल की म्यानवाली तलवार, जिसकी सुनहरी मूठ पर लाल रेशम का रूमाल बँधा था, उसने हाथ में ली।

तब तक पेड़ों की छाँह में रुनझुन और खनखन होती रही। माथे पर सुनहरा मोती भरा बोर बँधा, बड़ी-सी नथ सांसों की कथा कानों से कहने लगी। फिर ब्लाउज के बटन खुले और चोली के बन्द बँधे। घेरदार घाघरा पहन, साड़ी ओढ़ कर, कन्दौरा-करधनी की कड़ियाँ जुड़ाने जा रही थीं कि जैसे उँगलियाँ अपने आप रुक गयीं। मानो, कड़ियों की खुली रहने की चाह को उँगलियाँ स्पर्श से जान गईं, लेकिन मस्तिष्क ने सदा का अपना कठोर अनुशासन बढ़ाया और कड़ियाँ जुड़ गईं। अचला ने एक बार अपने को सिर से पैर तक देखा

और स्वयं पर मोहित हो गई। उसे यह भी प्रतीत हुआ कि जिस भेद को वह गोपन रखना चाहती है, उसे यह परिवेश प्रकट कर रहा है। मैं सचमुच दुल्हिन-सी क्यों लग रही हूँ ?

फिर चूड़ियाँ खनखनाईं। पायल रुनझुनाए और मन के गजरों से गंध फूटी। अचला साड़ी का छोर ऐंठती, पेड़ों के पर्दे से बाहर आई—

और शिवना के कछार में प्राण आ गये !

दामा हजूरी अपनी आदत को वश में न रख सका और अचला के स्वागत में बोला—'घणी खम्मा अन्नदाता !' सुनकर ठाकुर ने अट्टाहास किया और अचला सहम गई। दामा को आज पहली बार अचला के विरुद्ध अपनी जीत का आभास हुआ। वह जो उसे हर समय चिढ़ाती रही थी, आज अपने पर ही चिढ़ रही थी !

यात्रियों ने फिर से ऐड़ लगाई और घोड़े मंज़िल का अंत समीप जान पूरे वेग से दौड़ चले। कुछ ही दूर जाने पर बराती आ मिले और सबने समारोहपूर्वक दुल्हा-दुल्हिन का स्वागत किया।

दो गुप्तचर तीनों सरदारों के पास आये और गुप्त मंत्रणा करने लगे। तदनन्तर ठाकुर ने सभी लोगों को सम्बोधन कर कहा—"भाइयो, भोजन और विश्राम के बाद तीसरे पहर हम दलौदा-स्टेशन पहुँच जायेंगे। वहाँ अचला देवी का आदेश पालन करें और इनके कहे मुताबिक अपनी जगह सँभाल लें। साँझ को स्टेशन पहुँचते हम अपने असली रूप में आ जायेंगे।



शांति ने जब अपने कमरे में प्रवेश किया तब घर के सब सो रहे थे। उसके कमरे का रास्ता बूआबा की कोठरी के सामने से गुजरता था। शांति जब उधर से निकली तो उसके कान पर तुलसीदास की वे पंक्तियाँ पड़ीं, जिनमें उन्होंने नारी को ढोल-गंवार के समान बतलाया था। वह रुकी नहीं परन्तु तुलसी की चौपाई सुनकर उसने ऊपरी दाँत से अपना अधर दबाया। उसकी मुट्ठियाँ बँधी हुई थीं, वह उसी वेग के साथ कक्ष में आई। कमरा। वैसा ही था। जैसा कि वह छोड़ गयी थी। उसे अपना कमरा देखकर प्रसन्नता हुई। और मन में वे भाव लौट आए जो वस्तु के पुर्नमिलन पर व्यक्ति के मन में उठते हैं। उसने इधर-उधर एक महीन और सरस दृष्टि डाली और अन्तर से कोई पुकार उठी—'अमर'।

अपने पति से मिलने के लिए, उसे अपने अंक के बायें पार्श्व में लेने के लिए उसका जी उतावला हो गया। इस प्रकार अपने अंक में अमर को समेट कर वह शून्य बन जाना चाहती थी। सर्वस्व देकर, सब कुछ उस पर न्योछावर करके वह जीवन की भग्न-प्रतिभा को पुनः प्रतिष्ठित करना चाहती थी। तभी एक हजूरिन आई और मेज पर चाय की ट्रे रख गई। जाते समय उसकी दृष्टि में एक नया-सा अपरिचित भाव था !

शांति ने चाय नहीं पी। वह पति से अलग रह कर, अकेली चाय नहीं पिएगी। उसका अस्तित्व अपने पति के

पश्चात् ही है। वह शून्य है। पति के होने पर ही इस शून्य का कोई मूल्य है। नहीं तो नहीं। वह तेजी से कमरे के बाहर हो गयी और जीना उतर कर बरामदा पार कर, आगन लांघ कर, उस जगह आई जहाँ अमर का विश्रामवास था।

कमरे के बाहर सीढ़ियों पर दोनों ओर रखे गमलों से भीनी-भीनी गंध उठ रही थी, जैसे भोर के समय शास्त्रीय-संगीत सीखने वाली किसी बाला ने लयकम्पन का अवगुंठन उठाया हो। शांति ने दरवाजा खटखटाया। द्वार अमर ने खोला—"आप हैं? कहीं यात्रा पर गयीं थीं या किसी मन्दिर में?"

"मुझे भीतर आने दीजिए।"

"आइए!"

शांति ने ज्यों ही उस बड़े कमरे में कदम रखा, वह ठक रह गई। अमर की सेज पर ऊनी शाल ओढ़े एक स्त्री अभी भी सो रही थी। शाल का ऊपरी सिरा उसके भाल तक पड़ा था और उस स्त्री की चिकनी बाहें और केश बाहर फैले थे। अमरसिंह एक हाथ से पर्दा उठाए, अभी द्वार पर ही खड़ा था, जहाँ वह था। शांति ने फिर ओठ काटा और स्त्री कौन है यह जानने के लिए उसने शाल का सिरा झटके से हठा दिया—'वह' कामदार की बीवी थी। शांति इस सुप्ता सुन्दरी की मुंदी आँखों के बाहर छलकने वाले रस को निरस मन से देखती रही। फिर मन में एक मरोर उठी और आँखों में नारी की समस्त मजबूरियाँ, आँसू बन कर, छलक आईं··· फिर वह न रुकी, फिर वह न ठहरी। अमर अब भी एक हाथ से

पर्दा थामे था, वह बाहर निकल गई।

चार कदम बढ़ी होगी कि अमर ने पुकारा—'रुको'।

शांति वहीं रुक गई पर उसने मुड़ कर न देखा। तब अमर स्वयं बढ़कर उसके निकट आया—

"रात आप घर से बाहर क्यों गईं ?"

"आपको खोजने !"

"मैं कोई बच्चा हूँ ?"

"..........."।

"बोलो"।

"..........."

"जल्दी जवाब दो। अमरसिंह में प्रतीक्षा का धैर्य नहीं है। जवाब न पाने की आदत नहीं है।"

"मेरे लिए तो आप बच्चे ही हैं।"—वह रोने लगी—"मुझे भय है मैं आपको खो न दूँ !"

"तो इसीलिए गढ़ी से बाहर निकली थीं ?"

"जी होकम !"

"जी होकम की बच्ची !"—अमर ने कस कर थप्पड़ लगाया। शांति का सिर भिन्ना गया। पर, उसने अपने को सँभाल लिया। उसकी नन्हीं-सी ज़िन्दगी में आज पहली बार उसे किसी ने यों, अकारण, अपमानजनक दण्ड दिया था फिर भी बोली—

"मेरा कसूर हो तो माफ़ कीजिए पर मुझे अपने से दूर न रखिए।"

"जाओ यहाँ से।"

शांति ने झुक कर पति के चरण पकड़ लिए। अमरसिंह

ने उसे ठुकरा दिया—

"मैंने पहले ही कह दिया मेरे रास्ते में मत आओ। मिट जाओगी। रामा · · · ऐ रामा !"

"हुक्म अन्नदाता।"

रामा जाने किस कोने से लड़खड़ाता हुआ दौड़ा।

"लाना मेरी बन्दूक़। आज इसका फ़ैसला कर दूँ। जाता नहीं, क्या देखता है, बदमाश।"

अमरसिंह ने रामा को एक ठोकर मारी। उस एक ही ठोकर में वह तीन बार लुढ़कता हुआ चला गया। बन्दूक़ लेकर लौटा तो, रामा के पीछे-पीछे बूआ भी थीं।

शांति उठकर खड़ी हो गई—"मुझे गोली का भय दिखाते हैं आप ? चलाइए गोली, आपके हाथों मर कर मुझे खुशी होगी।"

तब तक कमर पर एक हाथ का सहारा लिए बूआ बा आईं—

"नारायण तेरा नाश करे · · · अमर बापू · · ·" और वे आँचल आँखों से लगाए, वहीं जमीन पर धम्म से बैठ गईं। उन्हें देखकर शांति ने घूंघट खींच लिया। रामा ने बूआ वा को सहारा दिया।

फिर बूआ, रामा और शांति—तीनों वहाँ से लौट चले।

दरवाज़ा बंद करते अमर ने इतना ही देखा—शांति की चाल में वजन था। उसका हरेक कदम नए निश्चय का द्योतक था। उसकी गति संकल्प की प्रतिच्छवि थी।

जब वह आंगन पार कर रही थी, कामदार मिला। उसने हाथ जोड़कर, बड़े अदब से 'मुजरो होकम' कहा। शांति ने

हिक़ारत की एक नज़र से उसे देखा और अपनी नज़र वापस ले ली। मुँह नीचा किए कामदार चुपचाप चला गया।



सांझ का झुटपुटा अवनी के आंगन में उतर आया और रात की काली देवी ने अपनी माया फैलाई। अंधकार ने सृष्टि के सभी वस्तु-पदार्थों के आकृति-आकार बदल दिये और अब वे केवल नाम और प्रकृति से पहचाने जा सकते थे। इस अंधकार की पदचाप से उल्लुओं और चमगादड़ों की नींद उड़ गई। काल ने क्षय और विनाश के जो बीज बोये थे, उन्हें सांझ ने पानी पिलाया था और रात में उनके पौधे निकल आये थे। नाश की बेल जल्द फूटती है। मौत का फल धीरे-धीरे पकता है परन्तु पकने पर, एक दम झरकर डंठल से अलग हो जाता है।

अचला की सेना दो-दो चार-चार की टुकड़ियों में बंट गई। वह स्वयं पिछले पुरुष-वेश में अनुराग के साथ थी। अनुराग को उसके दोनों रूपों और भूषाओं ने रिझाया था। उसे अचला के उभय परिवेश प्रिय थे। अचला की स्थिति विचल थी, अतः वह यह न विचार सकी कि उसे कौन सा रूप-स्वरूप इष्ट है। अचला के चरित्र की यह महत्ता थी कि कर्मक्षेत्र को सम्मुख पाकर वह अपनी स्वाभाविक क्रिया और गति में आ जाती थी। दलौदा का छोटा-सा स्टेशन उसे ब्रिटिश-साम्राज्य का प्रतीक जान पड़ा। यह उस बर्बर कायरता और क्रूरता का स्तम्भ था, जो उसके देश में सदियों से नाश की नींवें डाल रही थी। उसने अपनी राइफल सँभाली और ग्रीवा में चौड़ा-सा मफलर डाल लिया, जिसका एक छोर सामने सीने पर

उस जगह दबा लिया, जहाँ कोट के बटन दूरी पर टंके थे और चाँडी के बटन पिछली अँगड़ाई में टूट गये थे।

सिगनल डाउन था। प्लेटफार्म पर मुसाफिरों की संख्या गिनती की थी। पान और फेरी वाले किसी बड़े ठाकुर को आया जान, अपना सौदा उसके सामने ले जाने की तैयारी में लग गये। आधे फर्लांग की दूरी पर अचला ने अनुराग से कहा कि आप मेरे साथ रहिए, हम लोग अपना शिकार देखेंगे। मामा साहब आप दस जवानों के साथ एकदम पीछे चले जाइये। दामा तू मास्टर को उचित समय पर बात में लगाना और ऐनवक्त पर लंगड़ा मत जाना और अपना मुँह बन्द रखना। जालिम-सिंह, पच्चीस-पच्चीस आदमी पटरी के दोनों ओर खड़े कर, गाड़ी आने पर तुम हवा में फायर करते रहना। नाथ्या, तू पचास जवानों के संग इन्जिन को रोके रखना। हेमजी आप बाकी लोगों को लेकर मेरे पीछे बढ़िए। सब लोग बिखर गये।

जोर की सीटी सुनाई दी। धड़धड़ाहट गूंजी। धूँएँ, कालिख, गर्द और धूल से वातावरण भारी हो गया। उसी को मानो छेदती अचला की तीखी आवाज उठी—'सावधान ?'

स्टेशन के सारे मुसाफिर और लोग चौंक पड़े। खतरा जान प्लेटफार्म के बाबू और मास्टर इधर-उधर दौड़-भाग करने लगे। तब तक गाड़ी नाथ्या और उसके दल के सामने विकराल नागिन की तरह फुफकारती पहुँची। नाथ्या के लोगों ने कभी गाड़ी नहीं देखी थी सो गाड़ी खड़ी रहे-रहे कि उसके भयभीत भीलों ने इंजिन पर अंधाधुंध गोलियाँ चलाना शुरू कर दिया। अगले भाग को सक्रिय मान, ठाकुर के लोगों ने

पिछले भाग पर आक्रमण किया। महिलाओं के डिब्बे में गुप्तचर स्त्री-वेश में पहले ही उपस्थित थे। प्रतापगढ़ जाती स्त्रियों से काफी माल मिला। अचला और अनुराग कम्पनी के खजाने की खोज में लगे रहे। गुप्तचर कोई मिला नहीं। परेशानी बढ़ती जा रही थी! उधर इंजिन की दिशा में इतनी ठांय-ठांय क्यों हो रही है?

दोनों पहले दर्जे के सामने थे। अनुराग कुछ सोच कर उसी पर झपटा। अचला भी पीछे-पीछे बढ़ी। दरवाज़ा भीतर से बन्द था। अपनी राइफल के कुंदे से अनुराग ने खिड़की के शीशे तोड़ दिये। और राइफल का मुँह उधर किया। एक नव विवाहित जोड़ा बैठा था। तरुणी अपने पति की गोद में सिर रखे लेटी थी। पति के हाथ में पिस्तौल था।—'हमारे पास कुछ नहीं है।' उसने कहा।

अचला तब तक ऊपर चढ़ आई। और उसने भी झांक कर देखा। वह आधे पल में युवक को पहचान गई। अविनाश! लेकिन, चूंकि यह पुरुष वेश में थी। अविनाश इसे न पहचान सका। अचला ने 'उसकी' गोद में लेटी सुन्दरी को देखा और 'ओह!' कहती पीछे लड़खड़ा गई। अनुराग ने यह जानने के लिए कि अचला को क्या होगया, मुड़कर देखा था कि उसकी कनपटी पर युवक की पिस्तौल चली। अनुराग वहीं लुढक गया।

वातावरण में बड़ा शोरगुल मचा था। गोलियों की सनसन में स्थिति का आभास नहीं मिल रहा था। हेमजी अनुराग को अपने कंधे पर डाल कर एक ओर चला गया। क्रुद्ध सिंहनी के समान अचला डिब्बे पर झपटी। दो तीन आदमी उसके साथ चढ़ गए।

नाथ्या के आदमियों ने इंजिन पर जितनी गोलियाँ चलाईं, बेकार गईं। वास्तव में, वे इंजिन की विकराल शक्ल-सूरत से डर गये थे। और अपने भय को दूर करने के लिए, गोलियाँ दाग़ने लगे थे। ड्राइवर अपने प्राणों की फिक्र में भाग चला।

जब जालिमसिंह और ठाकुर के आदमी स्टेशन पर टूट पड़े। मास्टर के दरवाज़े दामा तैयार खड़ा था। नाथ्या और उसके भील भी आ गए।

दरवाजा तोड़कर भीतर प्रवेश किया गया। मास्टर ने हाथ जोड़कर जीवन की भीख मांगी। और कोने में रखे बोरे की ओर इशारा किया। दामा ने फौरन उसे उठा लिया।

अचला और हेमजी अविनाश का असबाब टटोलने लगे। दो आदमी अविनाश के सीने पर बन्दूक़ की नली लगाए खड़े रहे। हेमजी बड़ी सफाई और फुर्ती से सन्दूकों के ताले तोड़ता गया और अचला अपनी जेबों ने दुल्हिन के जेवर भरने लगी। सहसा, उसकी निगाह दुल्हिन के गले पर पड़ी। कीमती हीरों का हार वह पहने हुए थी। सुनहरी जंजीर में एक लॉकेट लटक रहा था, जिस पर अविनाश का चित्र जड़ा था।···यह वही अविनाश था, जिसे अचला ने अपने घर देखा था। अचला जब एक दिन कालिज से लौटी तो देखा घर पर कुछ मेहमान आये हैं।···और उनके साथ जो दुबला-पतला पर एक दम गोरा तरुण है उसका नाम अविनाश है। वही···वही तो है यह! उसी की तस्वीर इस रमणी के गले में लगी है! नहीं, यह उसका अविनाश है, दूसरे का नहीं। दूसरे के साथ नहीं जा सकता! अचला ने दुल्हिन को झकझोर कर उठा दिया। सामने वह सहमी-सी खड़ी रह गई। अचला ने राइफल

को बगल में लटका लिया और दोनों हाथों से उसके लॉकेट की जंजीर मुट्ठी में थाम ली। जोर का झटका दिया। दुल्हिन एकदम फूट पड़ी और उसकी आँखों से टपाटप आँसू गिरने लगे, पर कहीं उसके मन में शरम समाई थी कि पति सिसकी न सुन ले। फिर भी उसने गिड़गिड़ाकर अचला से कहा—"आप मेरा सब कुछ छीन लीजिए पर यह लॉकेट न लीजिए!" अचला की आँखें ईर्ष्या, घृणा और क्रोध से भरी थीं। दूसरे हाथ से उसने दुल्हिन की मांग का सिंदूर पोंछ दिया और एक बार में उसकी चूड़ियाँ फोड़ दीं। लॉकेट उसके कब्ज़े में आ गया और तुरन्त उसने नीचे फेंक कर उसे अपने जूते और ऐड़ी से कुचल दिया। दुल्हिन की हिचकियाँ थम गई थीं और अब वह अपनी जगह बैठी हाथों में सिर छिपाए बिसूर रही थी। अचला अविनाश की ओर एक विषबुझी दृष्टि डालकर हेमजी से बोली—'चलो'।

आक्रमणकारी चले गये। अविनाश अपनी परिणीता के पास आ बैठा। वह उसकी पीठ सहलाता रहा और फर्श पर कुचले लॉकेट को देखकर सोचता रहा—उस तरुण ने इस लॉकेट के प्रति इतनी शत्रुता क्यों दिखलाई?....उसने शोभा की मांग का सिंदुर क्यों पोंछ दिया? उसे तरुण का चेहरा कहीं देखा-सा लगा!

दुल्हिन के कंधे पर, अविनाश ने अपना एक हाथ धीमे रक्खा और, दूसरे से उसकी चिवुक को तनिक ऊँचा उठा दिया।

दुल्हिन की आँखों में रुलाइयाँ थमी थीं, और अब भी उसके चेहरे पर अपने पिया की तस्वीर पा लेने का हठ उजा-

गर था। अविनाश से जो नेत्रोन्मीलन हुआ तो, सुबह की धूप की तरह मुस्कान धीरे-धीरे उसकी आँख, पलकों और अधर-कपोलों पर फैल गई और उसने शरमाकर नजरें नीची कर लीं—

फिर भी रस बरस ही गया !



अपने कमरे में आकर शांति बड़ी देर तक बिलखती-बिसूरती रही। उसके मन में बार-बार यह प्रश्न उठता था कि वह कब तक यों आरती की दीपबाती बन जलती रहेगी ? क्या पुरुष और स्त्री के सम्बन्धों और पति-पत्नी की मर्यादाओं के सारे दायित्व में से अधिकांश उसी को वहन करना होगा ? क्या विवाहित-जीवन इतना निर्मम और निष्फल है !

फिर, सहसा जाने क्या हुआ कि, उसने सोचा वह कभी न रोएगी, कभी न इस प्रकार मायूस और मासूम बनेगी। वह केवल अबला नहीं है ! वह 'ढोल-गँवार-सूद्र-पसु-नारी' नहीं है····नहीं है। 'नहीं' वह ज़ोर से चिल्लाई—'नहीं।'

इसके बाद वह एकदम खामोश हो गई जैसे—पावस के दिनों में कभी-कभी आकाश में चमककर बिजली बुझ जाती है और उसकी चमकन की रेखा पहले उष्ण-उजली और बाद में शीतल-श्यामल, शांत और श्रान्त लगती है ! ऐसी ही कुछ खामोशी शांति की दामिनी-सी गोरी देह पर व्याप्त थी। उस वल्लरी की तरह वह थी, जो पवन के झोंके से अभी-अभी किसी गाछ के बाहुपाश से गिरी हो। लेकिन शांति के लिए वह भुजबन्धन कहाँ, जिसकी कोई भी सुहागवती नारी कामना करती है।

उसका 'नहीं' दिनभर बाहर के वायुमण्डल में घहराता रहा। जब दिवाकन्या के मुखपर घूंघट-सी साँझ झुक आई तो यह निश्चयात्मक 'नहीं' अधिक गहरा और गहरा होता गया।

पति का 'थप्पड़' उसके समग्र मन-प्राण को उद्वेलित कर गया था। उसके बाएँ कपोल पर दो नीली रेखाएँ उभर आई थीं और आँख के नीचे का भाग कुछ-कुछ उठ आया था। दिनभर वह बिछौने पर लेटी रही थी। थकान, थप्पड़, रुदन, वेदना, विचार, तन्द्रा और निराशा के अनेक कुचक्रों में उसका मन पीपल के कुम्लाए पत्ते-सा मुरझा गया था। उसने उठकर आइने में अपना चेहरा देखा। बाल बिखरे हुए थे। ओठ सूख गए थे। एक कपोल पतला और एक मोटा लग रहा था। एक आँख छोटी पड़ गई थी! अपनी यह रूप-दशा उसने देखी और एक फीकी मुस्कराहट उसके होठों पर आई।

और उसने दर्पणवाली तिरस्कृता सुन्दरी से कहा—'नहीं। अब नहीं।'

खिड़की से बाहर झाँक कर देखा। दूर-दूर तक सूनापन छाया था। दाहिनी ओर ओटले पर गंगा हजूरिन अपने शिशु को 'बोबा' दे रही थी। यानी दूध पिला रही थी। उसकी पीत कंचुकी और लाल कुर्ती की मलमल से झाँकता प्रपुष्ट और श्यामल स्तनमंडल कक्ष की इस खिड़की से शांति स्पष्ट देख सकती थी।

काश, ऐसा नन्हा उसके भी होता! उसकी माँ कहा करती थी, जिस घर में बच्चे नहीं, वह घर—घर नहीं, श्मशान है। उससे तो यह पुत्रवती हजूरिन नौकरानी ही भाग्यवंती है। इसकी जगह यदि शांति होती तो कितना अच्छा होता—दिनभर कड़ा परिश्रम, शाम को पति के साथ बैठकर भोजन और रात में अपने सुख-दुख की बातें करते-करते परस्पर बाँहों का तकिया बनाए सो जाना! उनकी बाँहों के तकिए

शांति के इन मखमली तकियों से ज्यादा सुखद हैं! शांति ने मन ही मन इस भाग्यवंती और उसके शिशु को आशीष दी और खिड़की बंद कर अनमनी-सी अपनी सेज पर लौट आई, लेकिन उसने देखा कि उसके पायताने एक छाया खड़ी है। वह चौंक पड़ी 'कौन ?'

दीपक की बत्ती बढ़ाई। शांति ने उसे पहचान लिया और घृणापूर्वक, मुख मोड़कर सो गई।

तभी मन में विचार आया, अमर के जिस प्यार-परस और स्नेह-स्पर्श से वह वंचित है, उसे यह अभागिन पा चुकी है। और अपने पति की इस प्रिया के प्रति उसे निष्ठुर तो नहीं ही होना चाहिए। 'पति की प्रत्येक वस्तु को सहेज कर रखना। पति जिसे मान दे, उसका पूरा सम्मान करना।' माँ की सिखावन का स्मरण हुआ।

"तुम क्यों आई हो ?" उसने पूछा

"होकम, अन्नदाता मुझे माफी बक्षें।"

—भौजाई ने रोते-रोते पैर पकड़ लिए।—

"अन्नदाता जानती हैं। मेरा कोई कसूर नहीं है। हमारा धरम-करम मालिकों की चाकरी में रहना है। पर कुँवरसाहब ने मेरे साथ न्याय नहीं किया है।"

"मुझे तुम्हारी बकवास सुनने की फुर्सत नहीं है।"

"यदि मेरी जगह अन्नदाता होतीं तो, शायद ऐसा न कहतीं। मैं हजूर का ज्यादा समय नहीं लूँगी, और आराम में खलल नहीं डालूँगी।"

"बात क्या है ?"

"दुहाई अन्नदाता, गुलाम के साथ विषय-भोग करते

मालिक को कई दिन हो गए हैं। मेरी सारी देह चूर हो गई है। मेरे महीने भी हैं।"

"क्या महीने ?" शांति समझी नहीं।

"महीने होकम, तीन महीने। मेरे गरभ है।"

"ओह !...."शांति का बदन थरथर काँपने लगा। उसे ऐसा लगा, जैसे लम्बी साधना के पश्चात्, अपनी सिद्धि को वह दूसरे के कोष में प्रत्यक्ष देख रही है ?—'गर्भ !'

"हाँ, होकम और मालिक ने मुझे दोपहर में भी परेशान किया। अब तो बड़ा कष्ट होता है।"

शांति यह सब कुछ न समझी। अब भी वह निरी अबोध थी।

भौजाई ने अपनी पुकार जारी रखी—"आज मैंने मालिक से जापे (प्रसूति) का खर्च मांगा तो, लाल-पीले हो गए और बोले ये अठन्नी ले। गरम पानी में गुड़-हल्दी पी ले। हजूर मैंने यह पाप करने से इन्कार किया तो मुझे पीटा और सिर्फ़ दो रुपए देकर निकाल दिया।...."

भौजाई ने अपने आँचल से बँधा दो रुपए का नोट शांति के सामने रख दिया।

शांति दूसरी ही दुनिया में थी। उसे इस गुलाम हजूरिन में शताब्दियों की प्रताड़िता-पीड़िता नारी के दर्शन हो रहे थे !

उसे अचला के वचन याद आए। अचला ठीक कहती थी। क्या नारी इसी प्रकार लुटती रहेगी ? क्या इसी प्रकार वह पुरुष की नग्न वासना का भार उठाती रहेगी ! क्या इसी प्रकार उसका अबलापन उसकी बेड़ी बनता रहेगा। इन

बन्धन-कड़ियों को तोड़ कर, इन शृंखलाओं को चूर-चूर कर वह कभी मुक्त न होगी ?

—शांति का रोम-रोम विद्रोह कर उठा। जी में प्रबल ज्वार उठा कि वह अभी अपराधी को मृत्यु दंड दे दे, आखिर उसका क्षत्राणित्व कब काम आएगा ! किंतु अमर पति है। पतिघातिनी वह नहीं बन सकती। भारतीय कुलवधू अपने देवता की ओर आँख उठा कर देखे ! क्या अपनी सुहाग-रेखा पर अपने हाथों चिता-भस्म मल सकती है ?

भावों से आन्दोलित शांति के वदन पर रेखाओं का उतार-चढ़ाव देख भौजाई ने अनुभव किया यह अपने द्वंद्व में उलझी है। उसने आखरी बात कही—.

"अब मैं चलूं होकम, ये दो रुपए भी रहने दें। आपके काम आएँगे। मैं तो कहीं कुएँ-बावड़ी में डूब मरूँगी।"

"नहीं पगली ऐसा नहीं करते।"

शांति ने देखा, गर्भ के प्रभाव से भौजाई की देह भर गई है। कटि-प्रदेश पुष्ट और वृद्धिमान् हो चला है। वक्षोजों का तनाव कुर्ती की परिधि को काट देना चाहता है, जैसे वर्षा के सरोवर-जल की बाढ़ बाँध को तोड़कर, फूट पड़ती है !

और उसने सोचा यदि भौजाई के साथ, इन्हीं दिनों वह भी सिमन्तनी-गर्भिणी होती तो दोनों के शिशु भाई-भाई या भाई-बहन होते ! लेकिन सत्य यही होते हुए भी, सत्य यह नहीं है। एक आसन पर बैठता और दूसरा दास बना पास खड़ा रहता !

भौजाई के शब्दों ने उसका ध्यान-भंग किया—

"ज़रा-सी बात के लिए राज-कचहरी में नहीं करना

चाहती होकम। मेरे नैहर में पंच-पंचायती होती है पर बदनामी सब पर आती है। आज मैं पंचों में जाऊँ तो इसी गढ़ी का नाम बिगड़ जाएगा।"

"वह तो अब भी बिगड़ा हुआ है।"

"है होकम, पर यह बात दूसरी है। लोग पीठ-पीछे कुछ भी कहें पर सामने ठकुरसुहाती कहते हैं। पंचायत में ऐसे लोगों को भी मौक़ा मिल जाता है।"

"अपनी जाँघ उघाड़े, अपनी ही लाज जाती है, भौजाई।"

"होकम, हमारी कैसी लाज? जाँघ तो उघड़ गई, अब बचाने की फ़िक्र करने से क्या? लाज की चिंता तो बड़े लोगों को होती है, बड़े घरों में होती है, जहाँ बहुत कुछ छिप-छिप कर होता है। ··· हमारा तो करम-धरम सब खुला है—सबके देखते है। ··· आपके चाकर की सलाह है, मैं बाप के गाँव पंचायत में जाऊँ।"

"कौन चाकर, रामा, ऐसा कहता है? उसे शर्म नहीं आती।"

"होकम ने फिर ले-देकर वही शरम की बात चलाई। शरम तो उन ठकुरानियों को है, जो छिपे-छिपे सईसों के साथ सोती हैं ··· हम कमीनों का क्या?" ···

"चुप रह ···"।

शांति क्रोध में खड़ी हो गई।

फिर ख्याल आया कि गुस्सा करने से बात बिगड़ जाएगी। भौजाई के बाहर बकने-झकने से अन्ततया अमरसिंह की बदनामी होगी। अमर की—उस अमर की, जो उसका पति है, शांति का पतिदेव है। लाख बुरा है, फिर भी उसका पति

है। उसके रहते पति की बदनामी हो, यह उसका अपराध है! उसके साथ वह भी बदनाम होगी। नैहर में लोग कहेंगे—शांति के पति ने ऐसी किया, वैसा किया। · · · और माँ जब सुनेंगी, कितनी व्यथित होंगी! और पिता जब जानेंगे तो, कितना दुख मानेंगे! · · · शांति हाय अभागिन, तू उस पिता की बेटी न हुई होती! इस गढ़ी की बहू न हुई होती! · · · तो क्या होता, दूसरी किसी अबला पर यह दुर्भाग्य टूटता! अच्छा हुआ, जो ईश्वर ने इस कष्ट के योग्य मुझे समझा · · · —इस उलझन में से जब निकली तो भौजाई को गले लगा लिया। दोनों सम-दुखी अबलाएँ जी जुड़ा कर सिसकने लगीं। उनकी इस दशा को देख रात शर्म से और काली पड़ गई! शरीर दो थे, पर वेदना का प्रवाह एक था। दो भिन्न तारों में एक ही बिजली बह रही थी।

शांति ने भौजाई को अपने जेवर देते हुए कहा—"मेरा यह हार, ये बाजूबंद ले जा। 'उनका' नाम तक न लेना किसी के सामने। और ले ये चूड़ियाँ भी, जब तेरे बेटा जन्मे, इनके सोने से उसके लिए कंठी बनवा देना। · · · अच्छा · · · अब भाग जा, · · · और देख · · · भौजाई चली गई क्या · · · देख, सीढ़ियों पर बूआ बा न मिल जाएँ! ध्यान रखना।"

लैम्प की रोशनी में घेरे पड़ते गए। कमरा चक्कर काटने लगा। पलंग घूमता नज़र आया। सिर ने दो-एक झोंके-झटके खाए और शांति बेसुध होकर धम्म से फ़र्श पर गिर पड़ी।

नई गढ़ी में सर्वत्र शांति व निस्तब्धता फैली थी। किसी को खबर न थी कि राजवधू के रंगमहल में रस बह रहा है या रक्त!



कभी आसमान कलशी की तरह कोरा रहता है। कभी, जैसे आषाढ़ में वह घनी घटाओं से घिर जाता है। पहले वह किशोरी के अन्तर-सा कोरा था, देखते-देखते तरुणी के मन में बसे स्वप्न-मेघों सा भर गया।

फिर स्थिति में गति और वेग आता है। आँधी, ओले, तूफ़ान, बिजलियाँ, बरसात और झंझावात सब तेजी से गुजर जाते हैं। बरखा हो या बसन्त, शिशिर हो या ग्रीष्म, बालापन हो या तरुणाई—घटनाएँ बहुत जल्दी बीत जाती हैं। रस जितना अधिक होता है आनन्दकाल उतना ही क्षणिक लगता है, अस्थायी होता है। बात यहाँ आध्यात्मिक आनन्द की नहीं, भौतिक की है। इसलिए रस का जीवन अनुभूति की सीमा और विस्तार के अनुरूप घटता-बढ़ता है, कम-ज्यादा होता है।

ऐसा प्रतीत होता है एक, दो, दस नहीं कई घटनाएँ भावी के पर्दे-पीछे छिपी रहती हैं, अवसर की ताक में। समय जब बलवान हो जाता है, घटनाएँ अचानक प्रकट होती हैं। कुछ नागिन के नए बच्चों की तरह रेंगती हुई सामने आती हैं, कुछ श्वेत पुण्डरीक-पुष्प के समान खिल उठती हैं। नागिन के संपेलों और पुण्डरीक की कलियों को लोगों ने दुःखसुख नाम दिया है। उनके बीच मौत की बिजली है कि जो अनायास चमक उठती है और अधिकतर तभी चमकती है, जब हम अपने ही को भूले, बेभान होते हैं।

अनुरागसिंह की मृत्यु ने अचला के मन का मंथन कर

दिया। पहली बार वह छिप-छिप कर रोई। आंचल से आंसू पोंछे, हिचकियाँ रोकीं। और जबरन्, आंसुओं को आँखों में थामे रही, ताकि कोई देख न ले।

नियत स्थान पर, किले की बावड़ी के पीछे वाली खाई में जहाँ घने पेड़ों की ऊँची, लम्बी शाखाएँ आपस में गलबांही डाले, रस के सपनों में भूली थीं। वहीं, दल के सभी आदमी दिशा-विदिशा से आ-आकर, एकत्र हुए। सबने पुनः बरातियों का छद्म परिवेश पहन लिया और अचला की सुगौर काया भी लहँगे-चोली और कंकनबेंदी के पहरावे में, केसर के कुँआरे और अछूते पराग-सी लहराने लगी।

लेकिन दूल्हा कहाँ ?

मानस की विकल पीर उसके शुभ्र कपोलों पर अपनी परछाइयाँ डाल रही थी, और कपोल अब अधिक श्वेत पड़ गए थे। उसके अरुण अधरों पर, जिनका रंग फीका पड़ गया था, मन की बुझी हुई बात फिर ताज़ी हो आई थी, फिर से मुखर हो उठी थी, पर सुननेवाला जो सामने नहीं था, इसलिए अबोली रही, उस नवागता वधू की तरह, शयनकक्ष के द्वार आकर जो रुक गई हो, जिसकी सेज सूनी हो। यों, इसे मनुष्य का दैव, अदैव, भाग्य या कर्मफल कहें, जिसका जो जी चाहे—नाम, रूप और संज्ञा दे परन्तु, वस्तु सत्य यह है कि ज्यों-ज्यों हम अपना भार उतारना चाहते हैं, त्यों-त्यों वह बढ़ता जाता है ! सो, चाहने पर भी अचला का बोझ कम न हुआ। मन का यह सम्भार इसलिए वृद्धि पाता है कि हम अपना भार अपने प्रियजन को दे देते हैं, और उनका ले लेते हैं। लेन-देन की यह प्रक्रिया हमारे चाहने, न चाहने पर भी चलती रहती

है और कोई शक्ति या वृत्ति है जो उस दिशा में अपना काम करती रहती है। अचला का मन भरा रहा। खाली न हो सका। अचला के अगम लोचन परिपूर्ण रहे, रिक्त न हो सके। और यह मनु-पुत्र विचित्र है कि कभी रिक्तता में, कभी पूर्णता में; कभी संगोपन और कभी प्रकाशन में रस का अवगाहन मानता है। उसकी मर्जी !

मिलन के पहले ही वियोग हो जाए, तो उसे क्या कहें ? दोनों का अन्त ऐसी विकल वेदना में परिणित होता है जो मिटती नहीं, और मिटती भी है, तो पत्थर पर निशान की तरह। यह निशान प्राणी मात्र के दिल-दिमाग़ और चेहरे पर हैं। चाँद के दिल का घाव इतना गहरा और श्यामल है कि सहस्रों संततियों ने उसे देखा परन्तु उनकी नजरों के स्पर्श से अब तक मिट न सका। सो दाग़ है कि अब भी विद्यमान है। और काश, यह दाग़ न होता और चाँद—दुनिया की उतनी सहानुभूति न पाता। पीर की कसक और कचोट से ही भावना जाग्रत होती है, सो, अचला जब अविनाश के साथ थी—बेबन्धन और स्वतन्त्र। न कुछ दोनों के बीच उपजा। न कुछ दोनों ने देखा और न पाया। अब इस अनुराग ने जो कसक दी तो भावनाओं के उद्‌गम उद्वेलित हो उठे और बन्धनों के शिखर गलित हिमखण्डों-से बह चले।

अचला ने अपने मन को खूब बरजा।

लेकिन, शव जब चिता पर रखा गया तो उसके नैना छलक-छलक कर बरस पड़े और मन के राजझरोखे में बैठी कोई वाग्दत्ता बाला पूछने लगी—'तेरा-इसका नाता ?'

प्रश्न ज्यों-ज्यों घहराता गया, वेदना त्यों-त्यों लहराती गई।

उसने चिता की परिक्रमा की और उस पर लेटे शहीद के युगल चरणों को अपने कुँआरे अश्रुजल से धोया। और उन पैरों का प्रतिबिम्ब अश्रु-तारों के मार्ग से अन्तर में उतर आया। फिर हृतंत्री में एक झंकार उठी, फिर एक सिसकी उठी और शिवना के सोए कछार में चंदन की चिता जाग उठी!

मामा ने बाहु पकड़ कर उस भांजी को परे कर दिया, जो अपने कौमार्य के दीप को वक्ष पर संजोए, क़ानून की कड़ियाँ काट कर एक दिन रतनगढ़ की अविवाहित गैल पर चली आई थी। लेकिन, भ्रम समझता है कि भार हल्का हो गया—ऐसा आज तक न हुआ। नई बेड़ियों ने तन-मन को बाँध लिया। रस, रूप, गंध, स्पर्श और प्यार मनुहार के बेड़ी-बंधन न हों तो, आदमी जिएगा कैसे?

चिता बुझ गई। पृथ्वी, पवन, अनल, जल और आकाश ने अपना-अपना अंश ले लिया। ज्योति अकेली अपनी राह चली गई। अचला ने चुटकी भर राख अपने भव्य भाल पर लगाई और मौन मुस्कराई।

बरात विदा हो गई।

हेमजी ने कहा—"हमें चाहिए कि चांदी और सोने के ज़ेवर कछार की इस रेती में कहीं गाड़ दें। समय हाथ से निकल रहा है और पुलिस हमारे पीछे लगी है।"

"मैंने कहा। हेमजी की सूचना सही है।—"

ठाकुर समरसिंह बोले—"दो मील का चक्कर देकर जंगल में डेरा डाल दें। भोजन और विश्राम करते भोर हो जाएगी। कल दोपहर होते देवगढ़ पहुँचना है। मैंने कहा।"

"अच्छी बात है। हेमजी हम दोनों चांदी, और ज़ेवर लेने

सुबह होते यहाँ आ जाएँगे।"

"चिन्ता न करें। सब ठीक हो जाएगा।"

"दोपहर में देवगढ़ की छतरियों में एक बैठक होगी। नागदा और इन्दौर के दो साथियों को हमने बुलावा भेजा था। वे वहीं आएँगे।"

"किसलिए ?" अचला ने पूछा।

"मैंने कहा, वे हमें अपने अनुभवों के आधार पर दल की रीति-नीति समझाएँगे। हम दलौदा की बात बतलाएँगे।"

"अच्छी बात है।" अचला ने स्वीकृति दी—"हमें समय पर पहुँचना है ?"

मैं आपको कछार और छतरियों में समय पर पहुँचा दूँगा। फिक्र की बात नहीं।"—हेमजी ने अचला को उदास देखकर आश्वासन दिया।

"जैसी आप लोगों की मर्जी।"

—अचला ने कहा, पर किससे कहा, यह स्वयं भी नहीं जानती थी। सबसे कहा। अपना और पराया उसके पास रह क्या गया था ?

"तो," मैंने कहा, 'चलो'।" ठाकुर बोले।

और सबने अपने घोड़े हवा में छोड़ दिए।

रात एक-एक पल के मुक्ता से बने 'मोती-प्याले' में रंगीन सुरा बन ढल रही थी, और साक़ी शशिबाला होंठों पर गीत की लालिमा, कटि पर यौवन-संभार और हाथ में सुराही संभाले पियक्कड़ तारक-समूह को बहला रही थी। उनकी आँख में जितना नशा माणिक-मदिरा का था, उससे अधिक साक़ीबाला के नीलम-नयनों की खुमारी का था!

आस पास की राहें छोड़कर यह छद्म बराती दल नदी के एक गहरे डोह के निकट पहुँचा। चाँदनी वहाँ अकेली नहा रही थी। किसी को आया जान, लाज के वश उसकी मुख जोत मंद पड़ गई और वह पास के झुरमुट में अपना छायापट ओढ़े छिप गई। फिर भी, टहनियों और पत्तों की जाली में से उसका उजला-उजला तन दिखाई दे रहा था। आगन्तुकों की पदचाप से जल के तीर अलसाए, छोटे-छोटे जीव-जन्तु इधर-उधर झाड़ियों में दुबक गए।

समरसिंह का घोड़ा अचला के पीछे था। अचला का रुकना देख, वे बोले—"मैंने कहा यह जगह अच्छी है।"

सब लोग वहीं उतर गए। अपने अपने घोड़े बाँधकर एक घेरे में बैठ गए। आठ आदमी चारों दिशा में दो-दो बंट कर पहरा देने लगे।

"दामा···ऐं दामा!"

"हो···कम अन्न···दा···ता।"

"दाल-बाटी की तैयारी करो।"

"जी··हो··कम···।"

हेमजी ने कहा—"जब तक खाना बनता है, हम लोग स्नान-ध्यान कर लें।"

"रात के वक्त डोह के पानी को छेड़ना ठीक नहीं।" समरसिंह ने डोह की तरफ स्नेह से देखा।

बात उनकी अचला को भी पसन्द आई। आदमी, यह चाहे जितना निष्ठुर हो, इसकी निष्ठुरता मानव-जगत् के लिए ही है, प्रकृति और मानवेतर प्राणियों के लिए नहीं। कहने लगी—

"मामा सा बात आपकी ठीक है। किन्तु हम दाह के

बाद लौट रहे हैं, इसलिए स्नान भी ज़रूरी है ।"

"तो थोड़ा पानी बाल्टी में एक ओर लेकर नहा सकते हो ।" मामा बोले ।

अचला मुस्कराई ।

"पहले मैं जाऊँगी नहाने ।"

"सामने ढाल के नीचे आप चली जाएँ । वहाँ पर्दा रहेगा । मैं ढाल के इस ओर बैठा पहरा देता हूँ ।"—हेमजी ने व्यवस्था की ।

"मैंने कहा, नाथ्या, दारू है क्या ?"

"हाँ बापजी !"

"तो बाँट दे थोड़ा-थोड़ा ।"

"हाँ बापजी ।"

"थोड़ा-थोड़ा क्यों"—ज़ोरावर बोला—"बहुत दारू है होकम, दो रात पीएँ तो भी खतम न हो ।"

"मैंने कहा, शाबाश ! और नाथ्या ! दामा ने टेसनबाबू के कमरे से जो थैला उठाया था, उसमें से क्या मिला ?"

"होकम उसमें तांबे के एक-एक दो-दो पैसे हैं ।"

"अच्छा तो बांट दो लोगों में ।"

नाथ्या ने तुरन्त हुकम बजाया । पैसे गिने गए । और दल के लोगों को भी गिना गया । एक-एक को दो-दो तीन-तीन आने पैसे मिले ।

फिर मंडली सुरासाधना में लग गई । हेमजी ने भी दो प्याले चढ़ाए और अचला के पीछे चला गया ।

अचला की एड़ी में एक काँटा गड़ा । उसने झुक कर उसे निकाल फेंका । और पहले दिन जवान की भौजाई के काँटा

लगने की बात उसे याद आई। कहाँ होगी बेचारी वह इस समय। शांति भाभी भी उसकी स्मृति में आई। यदि वह होती तो मैं अपना दुख-सुख कह कर जी हल्का कर लेती।

पेड़ से छूटी वल्लरी की तरह अचला की साड़ी उसके बदन से विलग हुई। बटन खुले और दोनों हाथ पीछे फैला कर उसने चोली को बाहुओं से खींचकर निकाली। लेकिन चोली थी कि भुजाओं का मोह छोड़ती नहीं थी। चोली एक दम ठंडी थी। आज तक अचला को कभी अपना ब्लाउज ठंडा नहीं लगा था। उसे सदैव अपना उतरा हुआ बॉडी तपे हुए दूध की ताजा मलाई की तरह उष्ण लगा था। आज तो इसमें भी उष्मा नहीं रही। हृदय जब सोया हो तो, उसके स्पर्श में तपन कैसे हो सकती है?

जल में पैर डाले, एक शिला पर वह बैठ गई। उसकी धुँधली परछाईं जल की सतह पर पड़ रही थी। अपनी अंजलि में थोड़ा जल लेकर अचला ने माथे पर लगाया। लम्बी श्रांति के पश्चात् जल का शीतल कोमल स्पर्श सुखदायी लगा।

वह अपने स्नान में निमग्न हो गई।

इधर अचला ढाल से उतरी थी कि हेमजी दूसरे पहरुए को बैठाकर झाड़ियों में ओझल हो गया। उसने अपना घोड़ा एक ओर बाँधा था। टेढ़े-मेढ़े रास्ते से, छिपता-छिपाता वह सपाट मैदान में निकल आया।

कछार पर घोड़ा रुक गया। उसकी बाग डोर एक पेड़ से फँसा कर वह जल्दी-जल्दी उस स्थान पर आया जहाँ चांदी और ज़ेवर रेत में गड़ा था। उसने एक चद्दर बिछाकर सारा मालमत्ता समेट लिया। फिर वह खरगोश की तरह दुबक

कर, पास की झाड़ियों में प्रविष्ट हुआ और अपनी नखदार उंगलियों से एक गड्ढा खोद कर पोटली गाड़ दी।

बाहर निकल, कपड़े की धूल झाड़कर, वह लपक कर घोड़े पर बैठा और जिस चाल से आया था, उसी चाल से लौट गया।

हेमजी का बिठाया पहरुआ वहीं ढाल के मुहाने पर बैठा था। अचला नहाकर बाहर निकल आई थी और अब तौलिये से केशों को छिटकाती, पहरुए से बात कर रही थी।

हेमजी ने पूछा—"क्या बात है?"

"कुछ नहीं, तुम्हारे लिए पूछती थी। कहाँ गए थे?"

"कहीं नहीं यहीं था।"

"अच्छा मैं डेरे पर जाती हूँ। नहालो तुम भी।"

पहरुए का गमछा मांग कर हेमजी ढाल के पार चला गया। अचला ने डेरे की ओर पांव बढ़ाया था कि पहरुआ बोला—"दीदी, हेमजी यहाँ तो नहीं था। वह आप से झूठ बोला है।"

"तो यहीं कहीं—डेरे पर रहा होगा।"

"मुझे कुछ संदेह होता है।"

"हमें अपने साथियों पर अकारण संदेह नहीं करना चाहिए।"

"लेकिन दीदी, हेमजी इन झाड़ियों में कहीं गया था। फिर घोड़े के खुरों की खट्-खट् सुनाई दी थी। डोह के किनारे वह गया होगा।"

अब अचला के मन में भी शंका का उदय हुआ। बोली—"तुम यहीं ठहरो, मैं आती हूँ।"

डेरे पर शेष समुदाय वारुणी की अर्चना में लीन था।

सबसे पहले ठाकुर समरसिंह ने 'दारु अरोगा।' फिर बारी बारी से प्यालियाँ चलने-ढलने लगीं। आँखों में लालिमा छाने लगी और ओठों पर उलझे-उलझे से फिकरे फिसलने लगे। कुछ लोग वहाँ से उठकर भोजन की तैयारी में जुट गये।

समरसिंह बार-बार ढालते रहे। दामा और नाथ्या भांड़ बन कर साथियों को रिझाने लगे। गायन-वादन में टोली ने होली के हुड़दंग का रूप ले लिया। ठाकुर इतना छक गए कि एक ओर लुढ़क गए। मंडली के कुछ मीने आपस में लड़ने लगे। कुछ राजपूत इस बहस के काँटों में उलझ गये कि चंद्रवंशी बड़े हैं या सूर्यवंशी ? बहस का बांस इस प्रकार फूटा कि परस्पर गाली-गलौज और तू-तड़ाक के बाद थप्पड़-लप्पड़ की नौबत आ गई। इस हो-हल्ले में ठाकुर की नींद उचट गई। आँखे मल कर वे काले रीछ की तरह उठे और पूछा—'क्यों रे छोकरों, कितना बजा।' उनकी गुर्राहट सुनकर सब चुप हो गए और एक ने नशे में झूमते-लूझते कहा—'होकम, दो-ढाई।'

"अपन यहाँ कहाँ हैं ?"

"नाहरों के जंगल में।"

"नाहरों के जंगल में ?··· दुत् ··।"

"होकम, कांसा अरोगना है ?" (भोजन ग्रहण करना है।)

"कांसा ?" ठाकुर ने आश्चर्य से पूछा।

जवाब में दामा ने आगे बढ़ कर चांदी की थाली ठाकुर के सामने रख दी।

"थाली माता ! आधीरात में। चल साले !" उन्होंने एक हाथ से थाली को हवा में उड़ा दिया और एक पैर से

दामा को जोर से लात मारी। वह दुहरा होकर टोली के सिरों पर जा गिरा।

"उठाओ डेरा, चलो यहाँ से! इज्जत धूल में मिल जायगी। मैंने कहा, पुलिस आती होगी।"

ठाकुर को पुलिस से भयभीत देख, और उनके मुँह पर 'पुलिस' शब्द उछलता देख, सारे जाट, मीने, भील-गमेती विलायती पठान, बाबा और राजपूत-हजूरी नौ-दो ग्यारह, हो गए और लंगूरों की तरह उछलते-कूदते लड़खड़ाते अंधकार के पर्दे में समा गए।

डेरे पर कठिनाई से चार-पांच व्यक्ति रह गए।

अचला ने हेमजी के घोड़े को देख लिया था कि वह हाँफ रहा है और ज़रूर काफी तेज़ी से दौड़ा है। वह लौट रही थी कि उसने अपनी सेना को नौ-दो ग्यारह होते देखा।

भारी मन, भारी पैर वह मामा के पास आई। नशे से उनकी आँखें अंगारे-सी धधक रही थीं। फिर, बिना कुछ कहे-सुने अचला कन्हैया के पास गई, उसकी पीठ थपथपाई और सिर झुकाए, उस पर सवार हो गई।

आकाश से एक तारा टूट कर मानों डोह के पानी में बुझ गया। अचला ने होंठ भींच लिए।

कन्हैया पहले हिनहिनाया, दुम के चँवर को फहराया, खुरों से ज़मीन को खूंदा और फिर बियाबान के बीच सरपट दौड़ चला!



सुहागन को विधवा होने का संदेश जब पहले-पहल मिलता है, कितनी भयद एवं करुण स्थिति होती होगी ! कितनी रिक्त, फिर भी कितनी भारप्रद ! और ऐसी थी शांति की यह रात !

भौजाई के प्रस्थान पर वह बड़ी देर बेसुध पड़ी रही। जब सुध आई तो कुछ समझ न पड़ा, कुछ स्मरण न आया ! उल्टे, उसे अपनी नादानी पर हँसी आई कि कैसी गँवार है वह कि यों फ़र्श पर ही लेट गई ! अभी कोई आ जाता तो ! बूआ बा ही गश्त लगाती चली आतीं ! उसे अपना शरीर कुछ हल्का लगा और वह योंही सोचती बैठी रही। हाथ भी सूना और खाली मालूम हो रहा था। बाजूबंद नहीं था, चूड़ियाँ नहीं थीं और कंगन—जड़ाऊ कंगन, वे भी नहीं !

क्या हो गया ! यह क्या हो गया !!

कहीं ऐसा तो न हुआ वह नींद में हो, और कोई निकाल ले गया हो ! लेकिन, गढ़ी में चौकी रहते कोई कैसे आ सकता है ? रखकर इधर-उधर भूल गई हूँ !

काफ़ी वक्त वह यहाँ-वहाँ, उलट-पलट कर ढूँढती रही। परेशान रही।

फिर उसे सहसा याद आया कि अभी-अभी तो कुछ गहने उसने भौजाई को रिश्वत में दिए हैं—उसका मुँह बंद करने के लिए ! अपने पति की बुराई पर पर्दा डालने के लिए। पति के पाप को आभूषणों से सजाया है शांति ने।

'है न ?'

'नहीं, नहीं।'

वह आप अपने से प्रश्न करती रही। डरती रही। जलती रही, छलती रही। गलती रही !....

लेकिन इसका अंत कहाँ !

भौजाई के गर्भ में वह बीज है, जो उसके अपने....। नहीं-नहीं मैं....नहीं चाहती।

पत्नी का अधिकार ! गृहिणी होने का अपना अधिकार नहीं चाहती ?

तो यह साधना, कष्ट-सहन, संघर्ष किस लिए ?—जो अप्राप्य है, उसकी प्राप्ति के निमित्त ही तो ! न !

शरबती पलकें भीग-भीगकर भारी हो गईं। केसरिया कपोल धुल-धुलकर और उजले होते रहे। लेकिन, रोने-धोने और मौन रहने से अधिकार और सुख कहीं किसी को मिला ?

संघर्ष—और सतत संघर्ष ही साधना को सिद्धि तक ले जाता है। अविराम, अविश्रान्त गतिशीलता ही मुसाफिर को मंज़िल तक ले जाती है।

"तुम तो अभी से हार गईं भाभी, अभी से इतना जल्द थक गईं ? जीवन में अभी ऐसी न जाने कितनी चट्टानें चूर करना है। उनके चूर्ण से तुम्हें अपने पथ का निर्माण करना है ताकि, जब तुम सफलता का वरदान लेकर लौटो तो, इसी राह वापस अपने नीड़ तक पहुँच सको, तब तुम्हें मालूम होगा कि राह वही है, पर उतनी कठिन नहीं है, जितनी अभियान के समय थी।....

"भाभी, कह दो कि 'हार मान ली।' हार मान लो तो आज से तुम मेरी भाभी नहीं। अचला की भाभी नहीं। मैं...

मुझे देखो, मैं संगीनों के पहरे, जेलों की दीवारें लाँघ कर रतनगढ़ तक चली आई और तुम····अच्छा, करो, जो जी में आए। पर, याद रखना यहाँ तुम्हारा दम घुट जाएगा···! तुम्हारे-जैसी सैकड़ों कुँवरानियाँ और हजारों ठकुरानियाँ सिसक-सिसक कर मरी हैं इस गढ़ी में आज तक।····लेकिन, किसी को ख़बर तक न हुई। दुनिया तो यही जानती-मानती रही कि वे रेशमी लँहगों और मखमली चोलियों में रास रचा रही हैं। उनके होठों पर सुरा के सुधामय प्याले छलकते हैं, पर किसे मालूम कि उनके अधरों ने वह हलाहल पीया है, जिसे देखने मात्र से ही अच्छे-अच्छे नीलकंठ पलायन कर जाएँ ?···

"तुम अपनी लीक पर चलो भाभी और अचला का अंतिम नमस्कार स्वीकार करो। तुम अपनी राह, अपनी रीति सँभालो। लोकलाज से डरो। पति के चपत, जूते, लात-घूँसे खाओ। उसकी गुलामी करो, बच्चे जनो, सौत की धोतियाँ धोओ और···"

"नहीं, नहीं, नहीं।"

—शांति ज़ोर से चिल्लाई—नहीं-नहीं—वह कमरे की चीज़ें इधर-उधर फेंकने लगी।

"नहीं···कुँवर बा नहीं···!" उसके केश, मोती की माँग भरे केश बिखर गए थे। वस्त्र अस्त-व्यस्त थे, नथ का काला डोरा टूट गया था। शीशे पर उसकी दृष्टि गई, अपना रूप देख कर, आप सहम गई। भीत, सशंकित कपोतिनी-सी लजा गई। और आकुलता के आवेग में उसने शीशे को खिड़की से बाहर फेंक दिया और खिड़की से सिर बाहर निकाले ज़ोर का चीत्कार किया—

"नहीं···नहीं···नहीं।"

वह सारे संसार को सुनाना चाहती थी पर उसकी पुकार और स्वर को किसी ने न सुना और रात का सन्नाटा उसे एक घूंट में पी गया। और चबूतरे पर बरगद के तले बैठे चौकीदार की ऊँघ उड़ गई और दो पल चौंककर फिर से वह निर्विकल्प समाधि में समासीन हो गया।

अपनी शैया पर जब वह लौटी तो मन, मस्तिष्क का आवेश शांत हो चला था और ख्याल आ गया था कि वह काफी अस्वस्थ रही है और काफी पागलपन कर चुकी है। फिर भी, उसे आश्चर्य हुआ कि अचला जो अभी-अभी उससे बातचीत कर रही थी कहाँ गई ?···नहीं-नहीं अचला कुँवर यहाँ आई नहीं। उसकी बातें···ओफ़ !

सचमुच, अचला की बातें कितनी प्यारी होती थीं—"भाभी, यदि अमरसिंह दरवाज़ा नहीं खोलता तो, दरवाज़ा तोड़ दिया जाएगा···भाभी उठो तुम राजपूत की बेटी हो। क्षत्राणी-धर्म और कर्त्तव्य की मूर्त्ति है।···ऐसी मर्यादाएँ स्वार्थियों द्वारा निर्मित हैं···उन्हें भंग करना ही सच्चा धर्म है···· इन चट्टानों को अपनी ठोकर से उड़ा दो भाभी ! बढ़ी चलो, तुम क्या नहीं कर सकतीं ? तुम आखिर अचला की प्यारी भाभी हो न ? या किसी और लड़की की····? जवाब दो···।"

"हाँ, भई, भाभी तो तुम्हारी हूँ···तुम्हारी हूँ।"

"तो····याद रखो····तुम्हें एक साथ सबके विरुद्ध उठना होगा। भाभी तुम जल की बूंद हो तो चिनगारी भी हो।····

"मरण वरण के योग्य नहीं, परन्तु यदि जीवन इतना दयनीय हो जाए कि उसकी गति दूसरों की कृपाकोर की

आश्रित बन जाए, तो संघर्षपूर्ण मृत्यु ही अधिक श्रेयस्कर है।…"

शांति घूँसा ताने खड़ी हो गई—मैं इस चट्टान को चूर कर दूँगी। अपना रास्ता बनाऊँगी। आज रात इस सारी गढ़ी को भस्म कर दूँगी।

उसने एक नज़र अपने कमरे को देखा—और उसे सूना-सूना लगा।

काश, आज उसके एक नन्हा मुन्ना होता! उसे छाती से चिपटाए आँख में आँसू समेटे, कोने में पड़ी रहती, तो जीवन इतना दुर्वह और दूभर न होता!

सिर थामकर पलंग पर बैठी। तकिए को वक्ष में दबाए सहलाती रही। दुलराती-हुलराती रही। चूमती-पुचकारती रही।

फिर एक आवाज़ उठी।—'नहीं…नहीं……तुम्हें यहीं नहीं रुक जाना है।'

समूचा शरीर ऐंठा था। भारी लग रहा था। थकान से घिरी एक चद्दर ओढ़े वह लेट गई।

सारे निश्चयों के बावजूद, उसका तन काँप रहा था और उसे लग रहा था जैसे जूड़ी चढ़ आई है। वह इसी अस्वस्थ मनोदशा में पड़ी रही और दिन उसके कमरे में अपनी परछाइयाँ डालकर चला गया।

शाम को उसके कमरे में चिराग़ नहीं जला। दिन भर, कोई नौकरानी भी उधर नहीं आयी। जब उसकी आँख खुलीं तब अमावस की घटाएँ घिर आई थीं और रात का जादू चलने लगा था। उसने उठने की कोशिश की, पर उठ न सकी। अंग-अंग में एक दर्द समाया था, हाथ-पैरों में जैसे बल नहीं

रहा था। उसने शरीर और हाथों की तरफ देखा और सोचा—अरे, मुझे क्या हो गया। मेरा हाथ अपना काम क्यों नहीं करता। उसने उँगलियाँ मोड़ने की कोशिश की, पर वे सीधी-सीधी काँपती रहीं, मुड़ी नहीं। उसकी इच्छा शक्ति मर गई थी। उसकी भावना का कर्म-स्रोत चूक गया था। मेरे पास कुछ न रहा, उसने सोचा, मेरा सब कुछ मर गया। जिस स्त्री का पति अपना न हो, उसका सब कुछ चला जाता है, मर जाता है।

"पर, मैं मरूँगी नहीं, मैं मरना नहीं चाहती।" उसने तकिये में मुँह छिपा लिया और यों ही पड़ी कोई घड़ी भर सिसकती रही।

चाँद के मुँह पर बारह बज रहे होंगे कि किसी की आहट पाकर शांति ने सिर उठाया—"जवान, तुम !"

"हाँ, मैं……मैं आपके बिना रह न सका।"

"जवान, जवान, मैं मरूँगी नहीं, मैं मरना नहीं चाहती, जीवित रहूँगी, मुझे कोई नहीं मार सकता।··पति का अभाव पत्नी की मृत्यु नहीं है, उसका सर्वनाश नहीं है।"

"तो तुम मेरे साथ·····"

"चलूँगी, जरूर चलूँगी। रतनगढ़ की ये दीवारें मुझे बाँध नहीं पायेंगी। ये काली चट्टानें मुझे रोक नहीं सकेंगी।"

"तो, चलो !"

दोनों छायाएँ वर्तमान की कारा से छूट कर अनजाने भविष्य के अंधकार की गहराइयों में ओझल हो गईं !



२२

रात भर ओस से भीगी कली सुबह की धूप से राहत पाती है। अचला डाक्टर अविकारी से मिलकर वैसे ही प्रसन्न हुई।

यह घटना देवगढ़ की 'छतरियों' में मिली बैठक की है। दल के गिने-चुने सदस्य नियत समय पर वहाँ उपस्थित हुए। ठाकुर मामा अभी तक नहीं आए थे। शायद रात की खुमारी के आलस को मिटाने के लिये वे फिर से पीने लग गए हों। कभी-कभी ऐसा होता है अवश्य। वे तीन-चार दिन तक शराब के रेले में डूबे रहते हैं और अपने तख्त पर पड़े काश्मीर से कुमारीकन्या तक के सारे हिन्दुस्तान को कोसते रहते हैं।

नाथ्या ने नागदा के साथी भैरव कपूर का परिचय हेमजी, ज़ोरावर, अचला और अन्य सदस्यों को दिया। भैरव कपूर को इस प्रांत में कौन नहीं जानता? किसानों और श्रमिकों के वे एकमात्र नेता थे। अचला ने उनका नाम सुना था। अजमेर के राजपूताना टाइम्स में पढ़ा था। आज उनसे परिचय हुआ। सब से अधिक आश्चर्य उसे डाक्टर अविकारी से मिल कर हुआ।

"मैंने आपको कहीं देखा है?"

"जिस दिन आप पहली बार रतनगढ़ आ रही थीं, उस गोरे तरुण के साथ, मैं आपके साथ चल रहा था।"

"ठीक!" अचला मुस्कराई। फिर अजमेर की चर्चा चलती रही।

डाक्टर अविकारी रतनगढ़ में रहते हैं और इस प्रकार

छिपकर रहते हैं, यह रहस्य नाथ्या और जोरावर को भी आज ही ज्ञात हुआ। बोले—"हम तो यही जानते हैं कि आप बूढ़े-पुराने डाक्टर हैं। शहर में आप की न चली, तो गांव में चलाने आए।"

उनके इस व्यंग से सब खिलखिला उठे। डाक्टर का जवाब हाज़िर मिला—"लेकिन गाँव में तो चल गई।"

"चल क्यों न गई—कपूर ने कहा—"यह इतने जो मरीज़ आपको मिल गए।"

"मैंने कहा, किनको मिल गए मरीज़?"—ठाकुर समरसिंह भीतर आए।

सबने उठकर आगत-स्वागत किया। परिचय-पहचान हुई। ठाकुर को भी डाक्टर से मिलकर बड़ा विस्मय हुआ।

"तो मैंने कहा, अचला आज की कार्रवाई डाक्टर साहब की सदारत में हो और सबसे पहले बोलने का मौक़ा मुझे दिया जाए।"

"क्यों? इसलिये कि आप मेरे मामा हैं?" यह तो आप दुतर्फा रिश्वत ले रहे हैं। दो तरह से, पहले डाक्टर को प्रधान बनाया, फिर स्वयं अपने लिए पहला अवसर रख लिया। आप पहले बोलें या न बोलें, अधिकार अध्यक्ष के पास है। पहले अध्यक्ष को आसन ग्रहण करने दीजिए।"

"मैं यह कार्यक्रम रखना चाहती हूँ कि हेमजी हमारी लूट के चांदी और जेवर का हिसाब दें।"

हेमजी ने कनखियों से अचला की ओर देखते हुए कहा—"कल जल्दी में हम उस जगह पर निशान रखना भूल गए, जहाँ हमने अपना माल रेत में गाड़ा था। इसलिए नदी के

काँठे मीलों तक फैली बालू में उस स्थान को ढूंढ़ लेना कठिन है।"

अचला इस व्यक्ति की बेईमानी को अब अधिक सहन न कर सकी और तुरन्त उठ कर खड़ी हो गई, बोली—"मैं तुम्हारा यह जवाब जानती थी। साथियो, कल जब मैं डोह में स्नान कर रही थी, हेमजी ने मौक़ा पाकर हमारे साथ विश्वास-घात किया। जब हमारा दल लम्बी थकान के बाद विराम ले रहा था, हेमजी अपने घोड़े पर बैठ कर कछार पर गया और वहाँ से सारा माला उड़ा ले गया। रात मैंने खुद इस बात की जाँच की है।"

"लेकिन अचलादेवी, हेमजी के साथ आप भी तो थीं? इसलिए जब तक हेमजी के पास माल बरामद नहीं हो जाता, अपराध आप पर भी है।"

"यह ठीक है।"—ठाकुर ने कहा।

"मैं अपने अपराधों की सज़ा पाने के लिए हर वक्त तैयार रहती हूँ। मेरे आदमी हेमजी के पैरों के निशान खोजते हुए माल की तलाश में गए हैं।"

इसी समय दामा के साथ वह आदमी आया जो कल डोह पर अचला के लिए हेमजी का पहरुआ था। अचला के आदेश पर पहरुए ने बतलाया कि किस प्रकार रात में उसने हेमजी को एक ओर बँधा अपना घोड़ा लिए, जाते देखा था और अपना संदेह अचला के सम्मुख प्रकट किया था।

दल के उपस्थित सदस्य पहरुए का बयान सुनने में तल्लीन थे पर अचला की चौकन्नी निगाह हेमजी पर थी। उसने देखा, हेमजी की मुद्रा से लगता है कि वह पलायन कर जाने को

अवसर की ताक में है। जब उसने पीछे बैठे हेमजी को खिसकते देखा तो, फुर्ती से अपना रिवाल्वर चलाया। गोली की आवाज पर सदस्यों ने चौंक कर देखा! गोली हेमजी की टाँग में लगी थी। अचला ने उसे धिक्कारते हुए कहा—"तुम्हीं जैसे कायरों के कारण देश के क्रांतिकारी आन्दोलन को हानि पहुँची है।" फिर वह सदस्यों से कहने लगी—"आप लोग अपनी चर्चा जारी रखें और हेमजी पर भी एक नज़र रखें। मैं पहरुए के साथ कछार में जाकर, माल का पता लगाती हूँ। जंगल का पत्ता-पत्ता छान लेने पर ही मुझे चैन आएगा। तब तक के लिए क्षमा करें।" भैरव कपूर, डाक्टर अधिकारी और मामा को बारी-बारी से वन्दन कर, वह घोड़े पर सवार हुई। पहरुआ उसके पीछे चला। आज फिर अचला उसी गैल पर जा रही थी, जिस पर चलकर, पिछले सप्ताह वह दुल्हिन बनी थी और अनुराग को मन में बसाया था। आज वह अकेली है। अनुराग का अभाव ज्योंही उसे स्मरण आया, वह उदास और ग़मगीन हो गई। कन्हैया अपनी मस्तानी चाल से चला जा रहा था और पीछे-पीछे पहरुआ छोटे-से टट्टू पर आ रहा था।

डाक्टर अधिकारी बोलने के लिए खड़े हुए थे कि दामा दौड़ा हुआ आया। उसके चेहरे पर हवाइयाँ उड़ रही थीं। उसने दो-तीन लम्बी साँसे खींचकर, हकलाते हुए कहा—"भा···भा···भागिए···पुलिस!" ठाकुर समरसिंह अपने स्थान पर खड़े हो गए और उन्होंने इधर-उधर देखते हुए कहा—"क्या बकता है? डाक्टर आप अपनी बात चालू रखें, यह पागल हो गया है। भला, हमारी इन छतरियों की छाया का भी पुलिस

को पता नहीं लग सकता......।"

"यह तुम्हारा भ्रम है ठाकुर।" स्वामी जी के साथ पुलिस के कई अफसर और सिपाही आए।

सदस्यों के हाथ अपने-अपने पिस्तौल पर पड़े थे कि एक अफसर बोला—"व्यर्थ है, बाहर दूर तक हमारे कई सौ आदमी मशीनगन लिए बैठे हैं।"

अब ठाकुर समरसिंह ने स्वामी जी को विस्मय से देखते हुए कहा—"जय एकलिंग! महाराज आप?"

"हाँ ठाकुर। लेकिन मैं स्वामी या महाराज नहीं हूँ। मैं वही रामपुरे का थानेदार हूँ, याद है, जिसके दुधमुँहे की तुमने निर्दयता पूर्वक हत्या की थी! आज मैंने अपना प्रतिशोध लिया।" फिर सबको पकड़ लिया गया। ठाकुर कुछ देर खामोश रहे और बाद में दुखमय स्वर में डाक्टर अविकारी और कपूर की ओर देखते हुए बोले—"डाक्टर साहब, हम नामाकूलों की महफिल में आकर आपको भी यह अपमान देखना पड़ा।"

डाक्टर अभी भी निर्द्वंद्व थे। उनके लिए जेल-पुलिस और जुर्माना दिनचर्या के अभिन्न अंग थे। मुस्कराए—"आप चिन्ता न करें। हमारा सरदार सब देख लेगा।" डाक्टर का संकेत अचला के विषय में था।

ठाकुर समरसिंह ने साधुवेशधारी, थानेदार यानी स्वामी जी को कहा—"आपने प्रतिशोध की खूब कही। लेकिन इतना कष्ट क्यों किया। मैं स्वयं उस करनी पर प्रतिदिन पछताता रहा हूँ। हाँ, आपने साधु वेश में हमारे गुरु बनकर धोखा दिया, यह ठीक नहीं किया।" स्वामी जी चुप रहे। तभी दूर

डूंगर पर भीलों के ढोल बज उठे। स्वामी जी ने पुलिस अफसरों से कहा—"जल्दी कीजिए। भील अपने साथियों को इकट्ठा करने के लिए यह ढोल बजा रहे हैं। इसके पहले कि हम उनसे उलझें, इन बन्दियों को बड़ी चौकी पहुँचा देना चाहिए।" यही हुआ।

और उस दिन बड़ी देर तक देवगढ़ की घाटियों में ढोल घनघनाते रहे और उनके जवाब में गोलियाँ सनसनाती रहीं। यह अद्भुत साका देखने से अभिमानिनी अचला वंचित रह गई। वह दूर शिवना के कछार में थी। उसके आदमी पेड़ पर हेमजी के छिपाए धन को निकाल रहे थे। और अचला के हाथ में पड़ौसी गाँव के पते पर आई, पिताजी की वह चिट्ठी थी, जिसमें उनके लन्दन से लौट आने का हालचाल लिखा था। उसके लिए अजमेर आने का आदेश था।

कन्हैया के पास में खड़ी, उसकी अयालदार ग्रीवा पर अपनी गोरी बाँह टिकाए अचला विचार मग्न थी—अब अजमेर में उसके लिए क्या रह गया? अनुराग चला गया और अविनाश पराया हो गया। खैर, देखा जाएगा।

अचला के सर पर निश्चय और अनिश्चय का वातावरण मँडराता रहा।

●

रात की परी का जूड़ा खुला हो, और उसकी मदभरी आँखों का रस कण-कण पर बरस रहा हो—ऐसा जब वक्त हो, तो मुमकिन नहीं कि अमर के रंगमहल में कोई कार्यक्रम न हो।

इधर अमरसिंह के कमरे में अपना रोज का कार्यक्रम चलता रहा। कामदार, जो आँगन में शांति को मिला था, कुँवर साहब को बाहर बुलाकर बोतलें दे गया था।

कामदार की बीवी—केसर जब जगी, तब भौजाई भी सेवा में हाजिर हो गयी थी। केसर का अलसाया आलम देख कर भौजाई के मन में डाह तो जगा। लेकिन, उसने मन ही मन यह मान लिया कि जब तक केसर जवान है और उसके बे-बिखरे बदन में एक सर्व-भक्षिणी आग है, उसके विरुद्ध कुँवर को कुछ भी कहना, अपनी डाल काटना है। वह जानती थी कि केसर में जितनी वासना और अतृप्ति है उतनी उसमें नहीं है और जब वह अस्त्र नहीं है तो वह केसर से बढ़ कर पद अमर के दरबार में नहीं पा सकती।

भौजाई ने मुस्कराकर केसर का वंदन किया और उसके सौभाग्य पर उसे बधाई दी। फिर अपने हाथों उसे पोशाक पहनाई और चोटी गूंथ कर उसका सिर सूंघा। कुँवर अपने रंगमहल की इन दोनों दीप-बातियों को देख-देख कर प्रसन्न होते रहे। उनके दिल, दिमाग़ और देह की अवस्था उस रोगी की तरह थी जो आत्मसंहार के लिए सर्वनाश के पथ पर दौड़ा जा रहा था।

दिन चिड़िया के पंख पर बैठा उड़ता रहा। सांझ दुल्हन के घूँघट की तरह झुक आई। फिर बोतलें खुलीं, प्याले बढ़े और दौर चलने लगे। अमर के मन से कुल-परिवार और शांति की सारी चिन्ताएँ स्वप्न बन कर उड़ गईं। फिर अँगिया-कुरती लँहगे में सजी-सजाई ढोलिनें आईं। फिर झुक-झुक कर उन्होंने मुजरे किये। फिर विलास की बांसुरियाँ बजने लगीं। बजती रहीं। तब नौकरों को हटा दिया गया और सज-धज कर भौजाई आई। उसे नाचने का आदेश अन्नदाता ने दिया। और भौजाई अपना नृत्य दिखाने लगी।

मृदंग झनकती रही। घुँघरू छनकते रहे। ढोलक ठनकती रही। तबले खनकते रहे और सारंगी का सुर रात के पेड़ की शाखाओं पर ऊँचा और ऊँचा चढ़ता गया। तभी घेरदार घाघरेवाली एक गोली घूँघट काढ़े, सबके बीच रास्ता बनाती अमरसिंह तक आई और उनके कान में, धीरे से, पर सबको सुनाती हुई बोली—"अन्नदाता, कुँवरानी शांति कुँवर भाग गईं!"

अधोगामी क्षत्रित्व का जो लाल खून जम कर सफेद पड़ गया था वह अमर के चेहरे पर झलकने लगा। 'हैं'—कहकर, वे उठ कर खड़े हो गये और 'हैं' कहते नीचे बैठ गये।

समाज की अँगड़ाई में सदियों का अनाचारी, अविचारी सामन्तवाद सड़ते रोगी की तरह मर रहा था। जबकि दुनिया बदल रही थी, अमर अपने से हीं बेख़बर था। गोली हजूरिन की बात सुन कर आस-पास की भीड़ छँटने लगी। कुँवर ने गरज कर क़हा—"लाना मेरी बन्दूक़।" लेकिन, औरतों और बोतलों के बीच बन्दूक़ कौन लाता? केसर ने उन्हें अस्वस्थ

जान कर नीचे बिठा दिया। और देशी दारू की गंध उड़ाता हुआ, लड़खड़ाता रामा भीतर आया और चौखट पर ही खड़े-खड़े उसने लम्बे-लम्बे हाथ फैला कर शांति कुँवर के चले जाने की खबर बड़े बेहूदे तरीके से ब्राडकास्ट की। अमरसिंह ने मसनद पर करवट बदलते हुए, भारी ज़बान में पूछा—"क्या हुआ, अभी आएगी। कितना बजा है ?" रामा अपने खाली हाथ दिखलाकर, कबूतर उड़ जाने की मुद्रा बतलाते हुए, बोला—"होकम, अब रामा की घड़ी में कुछ बजेगा-बजेगा नहीं और आपकी घड़ी भी हमेशा के लिए बंद हो गई है....." फिर सहसा अपना स्वर ऊँचा करते हुए, वह अजीब ढंग से अभिशाप की वाणी में कहने लगा—"कुँवर ! तुमने मेरी औरत पर हाथ डाला, भगवान ने तुम्हारी औरत को छू-मन्तर कर दिया ! ही.....ही.....ही।" पागल का-सा अट्टहास अमरसिंह के कानों को कुरेदता रहा।

रात बुढ़िया की नींद की तरह उड़ गई !



परिशिष्ट

एक वर्ष बीतने आया।

एक पल ही अपने क्रोड़ में जाने कितने परिवर्त्तन छिपाएं रहता है। फिर एक साल की तो बात ही अलग; जो शांति रतनगढ़ की हवेलियों में रही, वही आज शहर की अँधेरी गली में, छोटी-सी कोठरी में अपना जीवन बिता रही थी। जवान ने सट्टा और नशा छोड़ दिया था और अब वह भरपूर मेहनत करने वाला नौजवान बन गया था। लेकिन, शांति जो अपने पिता रावराजा गोपालसिंह के घर गोद, गद्दे और झूले पर पली थी, शहर के मजदूर-मुहल्ले का ऐसा कष्टमय जीवन सह न सकी। उसका तन-मन बदल गया था। मन खुश था, वह भरा-भरा था, परन्तु तन सूख गया था, जैसे पथिक-पद-चाप-विहीन वनान्तर में पतली-दुबली टहनी पर अकेला काँटा सूख गया हो! और उसकी नमी तो ठीक, उसका नुकीलापन ही झर गया हो!

पिछले महीने शहर के कारखाने में मज़दूरों की हड़ताल होने से शांति और जवान परेशान थे। रात का समय था। शांति जवान की प्रतीक्षा में चौखट पर खड़ी बाट जोह रही थी। वह हारा-थका-सा आया—"काम मुझे तो न मिला, पर तुम्हें मिल गया।"

"अच्छा है, दोनों में से किसी को तो मिलना चाहिए। इतने दिन तुमने मेहनत की, अब मैं करूँगी।"—शांति का चेहरा खुशी से खिल उठा कि वह काम पर जाएगी। अपने

हाथों अपनी रोजी कमाएगी।

जवान बोला—"मुझे भी तुम्हारी ही फिकिर थी। बस, तुम चैन से रहो, मेरा कुछ नहीं। मैंने भी कहाँ ये काम-धाम की बला पाली कि तुम्हें चिन्ता में डाल दिया...देखो न, गए साल अकेला था—मजे में स्वामी जी के पास रहता और छक्का-पंजा लगाता। चरस या गांजे के दो दम खींचे कि पेट भर गया। इस साल हम दो हो गए।"

"अगले साल हम तीन हो जाएँगे—"शांति ने अपने होठों पर एक उंगली रखकर मुँह बन्द रखना चाहा, पर मन का मोद अन्तर के नन्हें वासन में न समा सका, छलक आया। और शरमाकर शांति भीतर भाग गई।

"सुनो तो,...हरिराम मामा ने कहा है कि तुम्हारी घर-वाली को अपनी मालकिन के यहाँ नौकरी दिला दूँगा, इससे कुछ खरच-पानी चल जाएगा।"

भीतर से शांति का कोई उत्तर न मिला। उसके होठों पर सिनेमा की किसी सस्ती कड़ी का सुर था।

जवान ने एक कपड़े में लिपटी राधेश्याम रामायण की पुरानी प्रति निकाली और मोमबत्ती के सामने पढ़ने बैठ गया। आज उसमें दुहरी खुशी थी और जब-जब वह खुश होता, अपनी श्रद्धा-भक्ति प्रकट करने के लिए रामायण का पाठ करने बैठ जाता। वह सिर झुकाए किसी रोचक प्रसंग की खोज में था कि पीछे से दबे पांव शांति आई और उसने फूंक मारकर बत्ती को बुझा दिया, जैसे अमरसिंह का नाम उसने मिटा दिया हो! फिर जवान के गले में अपनी बाँहें डाल दीं।

वह ठाकुर की हवेली में कभी सुखी न हो सकी। मज़दूर की झोपड़ी में आज सुखी थी। गढ़ी में जो सुख उसने चार-पाँच वर्षों में नहीं देखा, वह उसे यहाँ मढ़ी में, पहले ही दिन मिल गया था।

वह आँखें मूँद कर सो गई। झोपड़ी के भीतर-बाहर रस का पारावार लहरा रहा था। और अलबेली रात के होठों पर जीवन-फिल्म के वही सस्ते बोल थे, जो अभी-अभी उसने शांति से सीखे थे!

हजूरी हरिराम जब शांति को लेकर आया तो अचला ने उसे सारा काम समझा दिया। मैले-कुचैले कपड़ों में गर्भवती शांति इस प्रकार दुबकी थी कि अचला उसे पहचान न पाई। शांति के मन ने समझ लिया कि अचला ने उसे नहीं पहचाना है। वह आँखे नीची किए अपनी मालकिन से आदेश सुनती रही और उसे विस्मय हुआ कि इसके स्वर में इतनी कटुता और तीखापन क्योंकर है?

अचला बरामदे में आकर ईजीचेयर पर बैठ गई। आँगन में हरिराम नए पौधों को पानी पिला रहा था। सब जगह प्यास है—अचला ने सोचा—एक मांग और पुकार है। सबको पानी, सबको शांति और सबको तृप्ति चाहिए। 'तृप्ति' कितना मधुर शब्द है, यदि उसके लड़की जन्मे तो, वह उसका नाम तृप्ति रखेगी, और जैसे एक किलकारी उसके कानों में पड़ी और उसने हैरानी से इधर-उधर देखा और अपने आप पर झुंझला उठी। फिर अविनाश और अनुराग की प्रतिमाएँ उसके सामने आईं और अपनी-अपनी छायाएँ डालने लगीं। फिर वे ओझल हो गईं और जीवन की उत्तुंग चट्टानें

लम्बी और लम्बी होती गईं। अचला ने सोचा इन चट्टानों के पार शांति और अमृत है······मुझसे तो यह नई नौकरानी ही खुशक़िस्मत है कि उसकी गोद में तृप्ति की रसधारा बहेगी और चट्टानें दूध से नहाएँगी। निराशा के इस भँवर में पिताजी के साथ लन्दन से आया सेक्रेटरी जॉनसन तिनके का सहारा प्रतीत हुआ · · · और मन बोला—"तू कब से उसे छिप-छिप कर देखती-चाहती है ?" तब जॉनसन का दिलीपकुमार-सा मुखड़ा अचला के अलसाए लोचनों में मुस्कराने-लगा और वह भी धीरे-धीरे मन की प्रशांति में मुस्कराई। पल भर में भावी की स्वप्न-कल्पना विराट् रूप में विस्तारित हो गई—जॉनसन से ब्याह यानी अविनाश से बदला, विवाह भरी पूरी गृहस्थी, बच्चे · · · छोटी-नन्हीं तृप्ति · · · तुतले बोल और रसभीगा दुलार ! · · ·

स्वप्न की प्रगाढ़ अनुभूति अचला को मुग्ध, सुधिहीन करती गई। कुर्सी के सिरे पर उसका सिर ढुलक गया और उसे नींद आ गई।

अपना काम समाप्त कर महरिया शांति बरामदे में रखे फूलदानों से बचती हुई, उधर निकली, उसने अचला पर एक नज़र डाली और मन में विचार उठा—यह कितनी सुखी है ! जी चाहा कि उसके पास बैठ जाए और अपनी अन्तरंग सहेली को मन के बोझ के बारे में बताए और रो-रो कर जी की जलन को तृप्ति दे, किन्तु वह ऐसा साहस न कर सकी। और अचला की बंद पलकों पर जो रसराते स्वप्न तैर रहे थे, वे उसके अधरों पर मुखरित थे। शांति ने जैसे उनका मर्मर स्वर सुन लिया और वह चुपचाप मन ही मन आंचल

सम्भाले अचला को असीसने लगी।

फिर शांति वहाँ से चली गई।

—उसे चट्टानों के पार जाना था।

